होशंगाबाद विज्ञान

अंक 33
मई 91

1. हम तो परभाकर हैं जी
4. जगह की समझ
12. पक्षियों का परागण में महत्व
15. बाल केन्द्रित शिक्षा
18. खत सवालीराम के
19. बच्चे खेल से क्या सीखते हैं
22. सवालीराम
24. गणित सीखना-सिखाना
32. खेल का गणित

शिक्षा व शिक्षकों से सम्बधित पत्रिका

सीखना बोझा हो या एक स्वाभाविक प्रक्रिया?
एक आतंक हो या मज़ा?
सीखना किसी तरह सवालों के सही उत्तर उगल देना है या अभ्यास करके अपनी समझ के ढांचे को ज़्यादा विस्तृत बनाना?
क्या यह ज़रूरी है कि गणित का नाम सुनते ही हमारे और सभी बच्चों के पसीने छूटने लगे?
क्या गणित वास्तव में इतना जटिल, अरुचिकर और संदर्भ-रहित है?
यदि गणित की आकृतियों से, अंकों से, क्रियाओं से, खेला जा सके तो शायद गणित मज़े से सीखा जा सकेगा और उसमे रुचि भी बनेगी।

संपादन
हृदय कांत
राजेश खिंदरी
राग तेलंग

सहयोग
ब्रजेश सिंह
इंदु
जया विवेक

चित्र
राजेश यादव
कैरन

वितरण
महेश शर्मा
रामभरोस

होशंगाबाद विज्ञान
होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने तक ही सीमित नहीं है
बल्कि शिक्षा में नये सोच और नवाचार का प्रतीक है।

हम तो 'परभाकर' हैं जी

प्राइमरी स्कूल में हमारे गुरु जी शरीफे खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे। यह शायद 1931 की बात होगी। होशंगाबाद जिले में हरदा तहसील में एक बड़ा गांव था तब रेहटगांव। अब अखबार में पढ़ता हूं कि वहां लॉयंस क्लब भी है। छोटा शहर हो गया है। इस बड़े गांव में पिता जी बस गए थे। यहां हिंदी की सातवीं कक्षा तक का स्कूल था। प्रधानाध्यापक हमारे रिश्तेदार थे। वे भी परसाई ही थे। मैं इस स्कूल में दाखिल हुआ।

हमारे स्कूल से लगा हुआ शरीफे का बगीचा था-जंगल ही था। हमारे गुरु जी शरीफा खाने के बड़े शौकीन थे। वे किन्हीं दो लड़कों से कह देते - जाओ, इस झोले में शरीफे तोड़कर ले आओ। अच्छे लाना, जिनकी आंखें खुल गई हों। और तीन-चार अच्छी डालियां भी तोड़ लाना। मुझे यह काम ज्यादा मिलता था क्योंकि मैं ऊंचा और तगड़ा था। यों शरीफे के पेड़ इतने नीचे थे कि लगभग जमीन से लगे थे। हम शरीफे लाते। उनमें से जो चौबीस

घंटे में पकनेवाले होते, उन्हें गुरु जी अलमारी में रख देते और पहले के रखे पके हुए 2-3 निकालकर टेबिल पर रख लेते। घर ले जाने के लिए शरीफे झोले में रख लेते। वे अलमारी से चाकू भी निकालते।

वे शरीफे खाते हुए एक पवित्र अनुष्ठान करते। चाकू से उन डालियों की बड़ी कलात्मक तन्मयता से गांठें निकालकर, उन्हें छीलकर सुंदर छड़ियां बनाते। बड़ी धार्मिक तल्लीनता से। इधर हमारे प्राण कांपते।उनकी यह कलाकृति हमारी हथेलियों के लिए थी। शरीफा खाकर तृप्त होकर, सुखी मनोस्थिति में वे छड़ी उठाते।

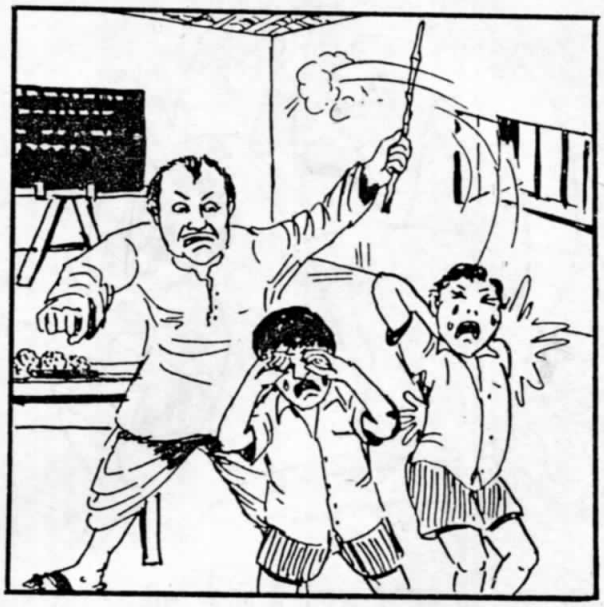

मुझे या किसी दूसरे लड़के को बुलाकर कहते- "क्यों बे, ये दो शरीफे बिलकुल कच्चे क्यों ले आया? तुझे पहचान नहीं है? हाथ खोल।" मैं या वह हाथ खोलता और दोनों हथेलियों पर एक-एक छड़ी सटाक पड़ती। हम दोनों हाथों को हिलाते और कांखों में दबा लेते। हमारे गुरु जी शरीफा खाते थे और हम शरीफे की छड़ी खाते थे। गुरुजी दिन-भर किसी भी कारण से हम लोगों को छड़ी मारते थे। पढ़ाई की भूल पर तो मारते ही थे।

पर वे आविष्कारक थे। नए-नए कारण मारने के खोजते थे। किसी से कहते- "क्यों बे, कान में अंगुली डालकर क्यों खुजा रहा है? कान साफ नहीं है? इधर आ। हाथ खोल।" इसके बाद-सटाक! "अपनी मां से कहना कि रात

को कान में गरम तेल डाल दे और सबेरे जब मैल फूल जाए तो निकाल दे।"

लगभग सब अध्यापक पीटते थे बच्चों को-कोई कम, कोई अधिक। इसमें शक नहीं कि अपवाद भी होते थे। ऐसे अध्यापक मुझे आगे मिडिल स्कूल में मिले। मगर सौ में से अस्सी अध्यापक पीटते थे। सोचता हूं, मेरे वे गुरु जी तथा दूसरे अध्यापक हम बच्चों को क्यों पीटते थे?

एक कारण तो यह हो सकता है कि वे 'सेडिज़्म' (पर-पीड़न प्रमोद) मानसिक रोग के मरीज हों। पर इतनी बड़ी संख्या में पूरा वर्ग सेडिस्ट नहीं हो सकता। एक कारण तो यह हो सकता है कि इनका वेतन बहुत कम होता है और ये परेशान तथा खीझे रहते हैं। एक कारण यह कि ये पढ़ाते नहीं हैं या बहुत कम पढ़ाते हैं।

अचरज यह कि ये बिना क्रोध या तनाव के या नफरत के सामान्य संतुलित मन से पीटते थे। मैं समझता हूं, तब, आधा शताब्दी पहले, ये पिटाई को पढ़ाई का एक जरूरी भाग मानते थे। तब कहावत प्रचालित थी Spare the rod and spoil the child. (अगर छड़ी का इस्तेमाल नहीं करो तो बच्चे बिगड़ जाएंगे) बच्चों को पीटना ये अध्यापक अच्छी शिक्षा का तकाजा मानते थे। इंग्लैंड के पुराने ग्रामर स्कूलों से यह सिद्धांत-वाक्य भारत आया था। पीटते अभी भी हैं-पर बहुत कम। अब तो छात्रों को पीटने के खिलाफ कानून भी बन गया है।

सोचता हूं, हम सुसंस्कृत होने का गर्व करनेवाले लोग बच्चों के प्रति कितने क्रूर हैं। बहुत निर्दयी हैं-स्कूल में भी और घर में भी। हमारे घरों में देखिए। बच्चे के हर प्रश्न का, हर समस्या का, हर छोटी हरकत का एक ही इलाज है- तमाचा जड़ दो, कान खींच दो, घूंसा मार दो। बच्चा कुछ मांग रहा है, उसकी कुछ समस्या है, वह ज़िद कर रहा है, वह पढ़ने में लापरवाही कर रहा है, उसके हाथ से कोई चीज़ गिर गई-तो एक ही हल है कि उसे पीट दो। बच्चे को समझेंगे नहीं, उसे समझाएंगे नहीं। समस्या कुल यह है कि वह या तो बोल रहा है या रो रहा है। कुल सवाल उसे चुप कराके उससे बरी हो जाने का हैं।

एक-दो तमाचे जड़ देने से यह काम हो जाता है। रोते हुए बच्चे को धमकाते हैं : "अरे चुप हो! चोप्प!" और चांटा जड़ दिया। चांटा तो रुलाने के लिए होता है, रोना रोकने के लिए नहीं। मगर वह बच्चा चुप तो डर के कारण हो जाता है, पर रोता और ज़्यादा है। वह बुरी तरह सिसकता है। मां-बाप को सिसकने पर कोई एतराज़ नही।

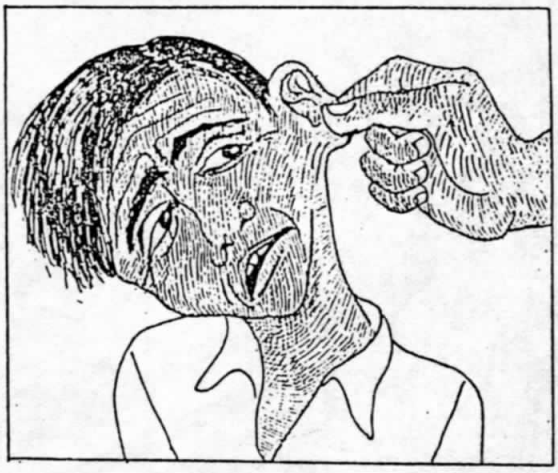

रोते बच्चे का मूड (मनोस्थिति) बदलना चाहिए। उसकी दिलचस्पी के विषय की तरफ उसका मन मोड़ देना चाहिए। मेरे भानजे का लड़का है सोनू। क्रिकेट का शौकीन है,

चित्रकला का भी। निजी मकान की अपेक्षा किराए के मकान में बगीचा ज्यादा अच्छा लगता है। बच्चा फूलों का शौकीन है। मेरी मेज़ पर फूल लाकर रख देता है और तारीफ का इंतजार करता है। टेलीविजन पर क्रिकेट देखता रहता है। उसके प्रिय खिलाड़ी हैं।

जब वह रोता है, तो मैं कहत‌ा हूं, - "अरे सोनु गुरु, इस मैच में तो भारत हार ही जाएगा। रवि शास्त्री तेईस पर आऊट हो गया।" वह फौरन रोना बंद करके कहता है "क्या बात करते हो मामाजी। अभी तो अज़हर को खेलना है। चौवे पर चौवे मारता है, अज़हर! वह सुनील गावस्कर, चेतन शर्मा वगैरह की बात करता है। खुश हो जाता है। कभी मैं कह देता हूं "तुम्हारा बगीचा सूख गया सोनू! आज तो टेबिल पर फूल ही नहीं हैं।" वह रोना बंद करके कहता है "अरे मेरा बगीचा कभी नहीं सूख सकता। क्या बात करते हो। अभी फूल लाता हूं।"

वह उत्साह से फूल लाता है और टेबिल पर बड़ी खुशी से सजाता है। हमारे लोग एक तो बाल-मनोविज्ञान नहीं समझते। फिर परेशान रहते हैं। काम में रहते हैं। वे एक-दो चाटे मारकर इस समस्या को फौरन हल कर देना चाहते हैं। पर बच्चे के भीतर कितना हिस्सा मरता है! उसके विकास पर बुरा असर पड़ता है। उसे सज़ा की आदत पड़ती है। वह बड़ा होकर नौकरी करता है तो गैर-जिम्मेदारी से काम करता है और डांट या दूसरी सज़ा के बिना काम नहीं करता।

मैं खुद बारह साल अध्यापक रहा। याद करता हूं तो मैंने भी कभी-कभी लड़कों को पीटा था। पर बहुत कम। एक घटना को मैं अब भी याद करता हूं, तो बड़ी पीड़ा होती है। मैं माडल हाई स्कूल में छटवीं कक्षा में पढ़ाता था। एक चपरासी का लड़का था। वह लगातार चार दिन नहीं आया। छुट्टी का आवेदन भी नहीं था। उसने फीस भी नहीं चुकाई थी। पांचवें दिन वह आया और बहुत उदास अपनी जगह बैठ गया। मैं उसके पास गया और बोला- "अरे, चार दिन तुम क्यों नहीं आए? फीस भी नहीं पटाई। नाम कट जाएगा।" मैंने तीन बार पूछा, पर वह वैसा ही खड़ा रहा। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने डांटा "अरे, कुछ बोलता भी नहीं है।" और एक चांटा मार दिया।

उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे। धीरे-से बोला "सर, पिता जी की मृत्यु हो गई।" अब मेरी हालत बहुत खराब हो गई। मुझे जैसे सौ जूते पड़ गए हों। आत्मग्लानि से मैं निश्चेत-सा हो गया। इतनी पीड़ा हुई कि मुझे लगा मैं पूरी कक्षा के सामने रो पडूंगा। मैं फौरन बाथरूम गया और वहां रोता रहा।

हरिशंकर परसाई

('हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं' से साभार)

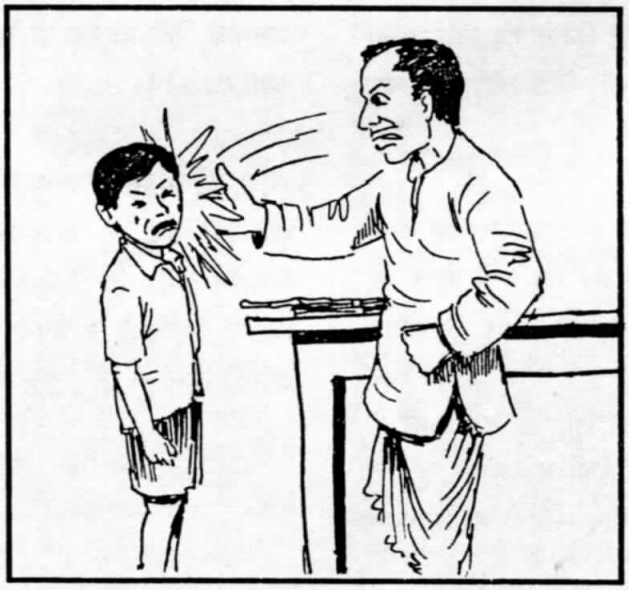

जगह की समझ

सामान्य तौर पर हम सभी मानते हैं कि बच्चे को जगह की कुछ न कुछ समझ होती है। हमारा यह मानना भी एक दृष्टि से सही है क्योंकि हम बच्चों को अपने आसपास ऐसा सब कुछ करते देखते हैं जो हमें जगह की समझ से संबधित लगता है, जैसे - बच्चे को ध्यान रहता है कि घर में कौनसी चीजें किस जगह रखी हैं या किस जगह रखी जाती हैं। घर में पीने का पानी कहां रखते हैं। रोटी कहां और किस बर्तन में रखते हैं।

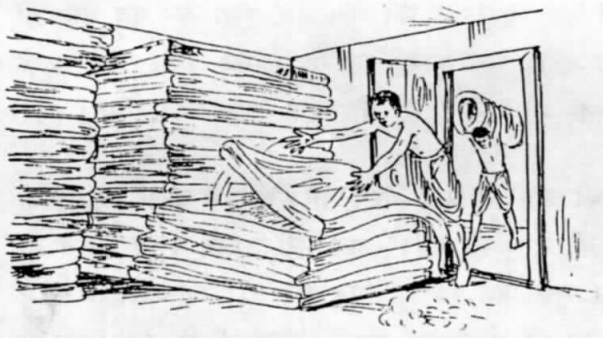

लेकिन जब हम "जगह" शब्द का अर्थ समझने की कोशिश करते हैं, तब हमें "जगह" शब्द से संबधित अनेक पहलू दिखने लगते हैं और उसके विस्तार को बांधना मुश्किल हो जाता है जैसे -

1. यदि कहा जाए कि इस कमरे में कितने गद्दे बिछाए जा सकते हैं तो आप "फर्श" (नीचे) की लंबाई-चौड़ाई देखकर अनुमान से बता दोगे।

लेकिन यदि इसी कमरे के लिए आपसे कहा जाए कि इस कमरे में कितने गद्दे रखे (भरे) जा सकते हैं। तब आप कमरे की लंबाई-चौड़ाई के अलावा ऊंचाई भी देखोगे और बताओगे। अक्सर पहले हम जगह से मतलब "तल" से लगाते हैं। फिर ऊंचाई-मोटाई से। यदि आपसे पूछा जाए कि इस कमरे में 9" x 4" x 3" की कितनी ईंटें रखी जा सकती हैं तब आपको निश्चित ही कमरे का आयतन व ईटों का आयतन निकालना पड़ेगा और फिर पूरी प्रक्रिया के बाद ही आप निश्चित संख्या बता पाएंगे।

2. यदि हम दो वस्तुओं के आकार की बात करें तो कम-ज्यादा या छोटा-बड़ा बताने से पहले अनुमानतः या नापकर उसके क्षेत्रफल या आयतन की तुलना करनी होती है।

इस तरह जगह से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष या वस्तु विशेष से संबधित नहीं है। जगह नापने जैसी प्रक्रिया से भी जुड़ा हुआ है, जो आगे क्षेत्रफल, आयतन, दूरी को परिभाषित करता है।

इस तरह के कितने ही उदाहरण हम सोच सकते हैं। घर का नक्शा बनाने में, या फिर शहर/कॉलोनी की योजना बनाने में, अलमारी, पेटी या रैक पर सामान जमाने में। आप कुछ नए उदाहरण सोचें।

चित्र, डिजाईन व आकृति में जगह की समझ

यदि हमें कोई भी अक्षर लिखना हो, चित्र बनाना हो, व डिजाईन बनाना हो तो एक खास समझ की ज़रूरत होती है। जिसमें आकृतियों के उपयोग की क्षमता शामिल है। मानो आपको किसी से ऐसे चिन्ह --

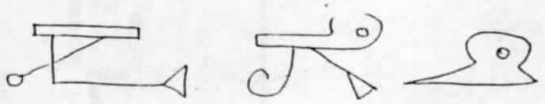

बनवाने हों तो आप उससे क्या कहेंगे? वैसे इन चिन्हों को बनाना बहुत मुश्किल नहीं लेकिन इनको बनाने में जगह के अनेक पहलुओं की समझ और उनके उपयोग घुले-मिले हैं। इनके निर्देश शब्दों में बताना बहुत ही मुश्किल होगा। शायद चिन्ह बनवाने की इस गतिविधि के निर्देश देने की कोशिश के बाद इसकी जटिलता का कुछ अंदाजा आप लगा सकें। जाहिर है कि आकृंतियों के उपयोग की समझ को उभारने के लिए अभ्यास बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसीलिए पैटर्न और फार्म ड्राइंग से बच्चों को लिखना सीखने में मदद मिलती है। वह धीरे-धीरे रेखाओं के झुकाव, कोण, गोलाई, अनुपात, बड़ा, छोटा, इस ओर या उस ओर, आदि सब को समझने लगते हैं, यद्यपि वह उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाते हैं।

नक्शा बनाने में

जब किसी चीज का नक्शा बनाते हैं तब तो दिशा और दूरी की समझ ज़रूरी है परंतु नक्शे के आधार पर कहीं पहुंचना हो तब भी इस समझ का उपयोग होता है। उदाहरण के लिए मानो आप को अपने कमरे में रखी पेंसिल चाहिए। आपको अपने मित्र को, जो उस जगह को नहीं पहचानता, निर्देश देने हैं जिससे कि वह पेंसिल ले आये। इसी तरह यदि कोई जानना चाहे कि होशंगाबाद के नक्शे में

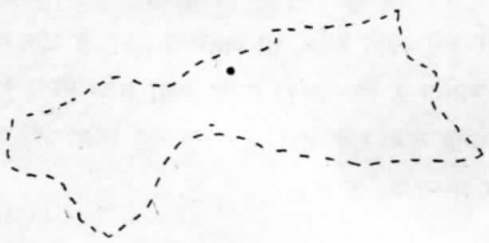

एस.पी.एम. कहां है; या फिर शा.बहु.उ.मा.शाला, और नर्मदा कालेज में गेट से कितनी दूर अंदर आने पर लायब्रेरी है; लायब्रेरी का दरवाजा किस तरफ है, उसमें पत्रिकाएं कहां रखी हैं; लायब्रेरी से पीछे के कमरे तक जाने का रास्ता कौन-सा है इत्यादि- इत्यादि, तो इसके लिए दिशा, दूरी व नक्शे के और पहलुओं की समझ चाहिए। दिशा और दूरी की समझ का उपयोग दैनिक जीवन में हरदम होता है।

जगह की समझ का एक और अंश है, व्यवस्था। किसी भी सतह पर या जगह में क्या-क्या है और कहां उपस्थित है? उदाहरण के लिए चेहरे पर नाक आंखों के बीच है, कान साईड में है, माथा ऊपर और ठुड्डी नीचे है आदि।

किताब की विषय सूची में पाठ का नाम बायीं ओर है और उसकी ठीक सीध में पन्ने का नंबर लिखा है और पाठों के नाम एक के नीचे एक।

किसी बगीचे में आम का पेड़ इस तरफ है और झूला उसके पास दाहिने ओर बंधा है और अंदर जाने के गेट की दाईं ओर नल है आदि आदि।

परिप्रेक्ष्य

खटिया कमरे से बाहर लानी हो तो दरवाजा छोटा है - सीधे नहीं निकलती तो उसे ऊपर की ओर घुमाकर बाहर निकाल लेते हैं। किताबें रैक पर जमाते समय यदि किताब रैक में सीधी खड़ी नहीं कर सकते तो उसे लिटा देते हैं, सिक्का हुण्डी में चपटा नहीं डाल सकते तो उसे घुमाकर खड़ा डालते हैं।

इन परिस्थितियों में हम किसी वस्तु के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों का मन ही मन चित्रण करते हैं और उसका उपयोग करते हैं। शतरंज या लूडो खेल रहे हों तो अपनी जगह पर बैठे-बैठे, दूसरी तरफ बैठे प्रतिद्वन्दी की चाल का मन में चित्रण कर लेते हैं, किसी भी एक जगह में स्थित हम किसी और स्थान से दिखने वाले दृश्य का चित्रण कर लेते हैं।

घर का डिजाईन बनाने वाले आर्किटेक्ट एक बिल्डिंग के बनने से पहले ही विभिन्न दिशाओं से बिल्डिंग का चित्रण कर लेते हैं। मिट्टी के खिलौने बनाने में बच्चे अपने परिप्रेक्ष्य की समझ का उपयोग करने और उसे विकसित करने का मौका पाते हैं। कुछ अन्य गतिविधियां जो परिप्रेक्ष्य की समझ के विकास में मददगार हैं, नीचे दी गई हैं :

क. वस्तु का भिन्न-भिन्न कोणों से चित्र बनाना।

एक ही चीज अलग-अलग कोण से देखने पर अलग आकार की दिखाई देती है तथा कुछ कोणों से हमें एक जैसी दिखाई देती है। इसका बच्चों से कक्षा में अवलोकन कराना संभव हो तो बीच में कोई सामग्री रखकर उसका चित्र बनाना।

जैसे - चौकोर डिब्बा बीच में रखकर बनाना।

ख. जब हमें भिन्न आकृतियों को जोड़कर कुछ बनाना होता है तो आकृति को किस दिशा में कितना घुमाने से वो कैसे दिखती है, इस समझ की भी ज़रूरत होती है।

जैसे -

इन दोनों को जोड़ने के लिए (एक दूसरे में फिट करने के लिए) त्रिकोण को 180 डिग्री घुमाकर साथ रखने से पूरी आकृति दिखेगी, इस बात की समझ होनी चाहिए।

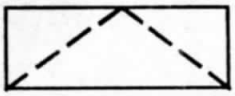

ग्लोब के साथ कई क्रियाएं करने में भी इस तरह की समझ का उपयोग होता है। या फिर नक्शे के टुकड़ों (राज्य या राष्ट्र) को जोड़ने में, फिट करने और पहचानने में भी।

ग. कार्ड से बना खोखला शंकु, बेलनाकार, घ ,घनाभ ऐसी त्रिआयामी आकृतियों को खोलकर फैलाना। उनकी दो आयाम वाली आकृतियां देखना, पहचानना, समझना जैसे

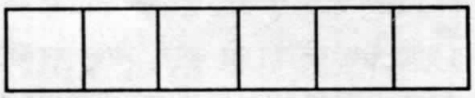

का घन और घन से

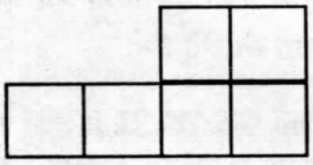

बन जाएगा।

घ. तीन आयामों वाली वस्तुओं के चित्र देखकर उन्हें बनाना। (मिट्टी की ईंटों से, माचिस की डिब्बियों से) तीन आयामों वाले ब्लाक सेट से बनी व्यवस्था का अलग-अलग परिप्रेक्ष्य से चित्र बनाना व पहचानना।

संरक्षण

जगह की समझ से जुड़ी हुई एक अवधारणा है संरक्षण। किसी चीज को उठाकर कहीं और रख दें तो भी उसकी आकृति और उसके आयाम वैसे ही रहते हैं। स्कूल और घर के बीच की दूरी चाहे वह भाग कर जाये, चल कर जाये या कूद कर जाये दूरी वही रहेगी, बढ़ेगी या घटेगी नहीं। जब बच्चे देखी हुई ठोस वस्तुओं, जो सामने नहीं हैं का मानसिक चित्रण बनाने लगते हैं--तब ये बात उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। एक और उदाहरण, छोटे गिलास में जितना पानी है - बड़े गिलास में डालने पर भी उतना ही रहेगा।

लेकिन जगह की समझ की शुरूआत किस बिंदु से हो ये एक जटिल मुद्दा है क्योंकि इसका सीधा अर्थ किसी एक बिंदु से जुड़ा हुआ न होकर तमाम बिंदुओं से उभरी समझ पर आधारित है। सामान्य तौर पर इन सब के बारे में बच्चों के अनुमान व अनुभूतियां वास्तविक स्थिति से अलग होती हैं। दौड़ कर जाने पर दूरी कम हो जाती है या लंबे गिलास में ज्यादा पानी होता है जैसी भावनाएं बच्चों की हो सकती हैं।

बच्चे में जगह की समझ के विकास की मोटी - मोटी जानकारी

बच्चों में जगह की समझ का विकास कुछ इस ढंग से होता है कि जगह का अनुभव और उसकी कुछ हद तक समझ बच्चों में "जगह" शब्द जानने से पहले ही होती है। जन्म से पहले बच्चे को जगह का आभास मां के शरीर में एक बंद एवं सुरक्षित जगह के रूप में होता है। जन्म के बाद खुली जगह में आकर भी वह खुली जगह के आयामों से अनजान है। धीरे-धीरे उसे अपने शरीर का अहसास होता है और वह ये समझने लगता है कि उसका शरीर कहां खत्म होता है और बाहरी जगह कहां शुरू होती है। वह यह समझ लेता है कि वह एक अलग व्यक्ति है।

शुरू के कुछ महीनों में बच्चे को जगह का अहसास उन वस्तुओं से होता है जिन्हें वह छू सकता है। जब वह चलने लगता है, उसके घूमने-फिरने की जगह तो बढ़ जाती है लेकिन वह अब भी जगह को सीमित ही मानता है। घर के बाहर आना-जाना हो, तब भी जगह उसके लिए वही है जो उसकी पहुंच में है। और वह धीरे-धीरे ही समझ पाता है कि दुनिया वह उसे जितनी समझता है उससे बहुत बड़ी है, और

उसकी पहुंच के बाहर भी चीज़ें हैं।

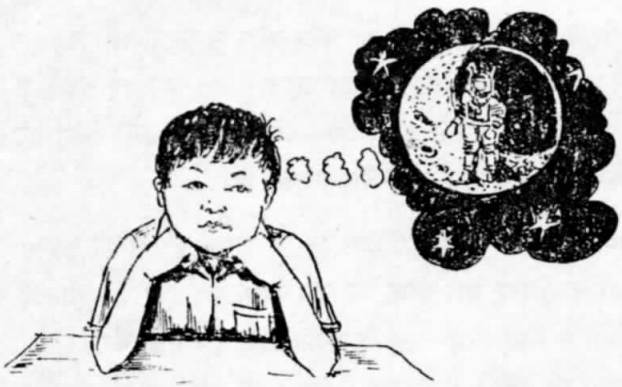

स्कूल में आने तक बच्चा यह समझ चुका होता है कि वह जगह में स्थित है। वह ऊपर, नीचे, आगे-पीछे, इधर-उधर इत्यादि जानता है। जगह को वह अनेक ढंग से समझता है जैसे एक गड्ढा या उसके और पास के बच्चे के बीच की जगह या दो चीजों के बीच की जगह इत्यादि। वह यह भी समझता है कि वस्तुओं को जगह में फैला सकते हैं, बिखरा सकते हैं। वह अंदर और बाहर समझता है अर्थात बंद जगह की सीमा समझता है।

5-6 साल का बच्चा समझता है कि सारी जगह एक लाईन से बंधी है। लगभग 7 साल में वह समय को दो घटनाओं के बीच के काल के रूप में समझता है-इस रूप में अपनी जगह की समझ को समय की समझ से जोड़ने लगता है।

अब वह यह समझने लगता है कि उसकी पहुंच के बाहर भी जगह होती है। लेकिन वह अब भी ये समझता है कि जगह एक स्थान है जहां पहुंच सकते हैं। वह किसी वस्तु को रखने के लिए जगह बनाना समझता है।

ये समझता है कि वह भले कितना भी दूर जाये "जगह" की सीमा नहीं पायेगा। वह ये समझता है कि कुछ चीजें पास होती हैं तो कुछ दूर। बहुत दूर और बहुत ऊंचा समझने लगता है।

आदमी चांद पर जा सकता है इस बात से वह हैरान नहीं होता। 11-12 साल की उम्र में ही वह यह समझ पाता है कि जगह असीमित हो सकती है, उसे हमेशा नापा नहीं जा सकता और उसमें ही पृथ्वी और अन्य ग्रह स्थित हैं।

किसी भी व्यक्ति के लिए "जगह" और अन्य अवधारणाओं के उभरने की जो क्रिया है - वह सदा खुद के अनुभव से शुरू होती है। प्रत्येक व्यक्ति जो अमूर्त अवधारणाओं की ओर पहुंचने की कोशिश करता है, उन्हें समझ सकता है।

जगह की समझ का विकास - कैसे ?

जगह के बारे में जितना भी बच्चे को बताया/समझाया जाये उससे बच्चे की 'जगह की समझ' पर असर नहीं होगा जब तक कि उसे-शारीरिक, ठोस व स्वयं के अनुभव के पर्याप्त मौके न मिलें।

अगर पर्याप्त तरह के अनुभव उपलब्ध हों तो बाकि का काम बच्चा अपने आप कर लेता है, लेकिन अगर ये अनुभव उपलब्ध न हों तो उभरती हुई अवधारणाओं का हनन निश्चित है। जगह के बारे में एक पूरी किताब पढ़ लें और हजारों शब्द सुन लें लेकिन अगर उसने कमरे के अंदर चारों तरफ भाग-दौड़ न की हो, रेलिंग की लकड़ियों के बीच से सिर न घुसाया हो, पेटी में ढेरों सामान न ठुंसा हो, गेंद को हवा में न उछाला हो, झूले में न झूला हो तो इन शब्दों का अर्थ उसके मन में नहीं जमेगा।

ठोस अनुभवों के द्वारा ही शिक्षक बच्चों में इन अवधारणाओं की समझ लाने का प्रयास कर सकते हैं। बच्चों को जानकारी की ज़रूरत नहीं बल्कि जगह से संबंधित अवधारणाओं को बनाने के मौके चाहिए, और ये सीखने की ज़रूरत है कि वे इन अवधारणाओं का उपयोग कैसे करें। बाद में कभी और जानकारी दी जाये तो वह बच्चों को अपनी अवधारणाओं को और विस्तृत करने में मदद कर सकती है। वह भी तभी अगर बच्चे के मन में वह अवधारणा बन चुकी हो।

पहले चरण में बच्चे को बड़े कमरे के अंदर और बाहर और छोटी सीमित जगह सभी अलग-अलग तरह की जगहों का अहसास पाने का मौका चाहिए। फिर उसे अपनी नई-नई बनती अवधारणाओं के बारे में चर्चा करने के लिए कोई न कोई चाहिए। उसे वह जगह में किन-किन अलग ढंगों से घूम सकता है, आ-जा सकता है इन बातों को ढूंढने/अवलोकन करने का मौका चाहिए। और ये खोज/अहसास करने का मौका चाहिए कि बाहर की जगह में जितना भी दूर जाये, जगह का अंत नहीं होगा।

इस तरह की समझ को उभारने में कई प्रकार की गतिविधियां मदद करेंगी। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए हैं :

जगह की समझ से संबधित गतिविधियां

1. **कक्षा का अवलोकन : तख्ते पर कक्षा की आकृति बनाना**

पहले केवल खाली लाईन और इसमें केवल एक कोई ऐसा चित्र बना देना जिसे सब बच्चे जानते हों। इसके बाद बच्चों से पूछकर एक-एक चीज का चित्र बनाते जाना। जैसे -

दरवाज़ा	तख्ता	खिड़की
दरवाज़ा	आलमारी	खिड़की

इसके साथ ही बच्चे जो भी और चीजें (कक्षा के अंदर की) बताएं वह उनसे पूछकर कि तख्ते पर किस जगह बनाना है, बनाते जाएं।

2. **कक्षा का नक्शा/रास्ता बनाना, तख्ते पर उसे देखकर चलो**

बच्चों के साथ पूछकर, समझते हुए, तख्ते पर कक्षा का नक्शा बनाना। इसमें कक्षा की चीज़ों के चिन्ह भी बनाने होंगे। नक्शे के बीच में दो-तीन बस्ते रखकर घर बना दें। घरों में नंबर लिख दें। घर क्रम 1,2,3 या फिर किसी का नाम मोहन का घर, सोहन का घर आदि। इसी तरह तख्ते पर बने घरों (बस्तों के चिन्ह) में भी नंबर दे दें। इसके बाद हम बच्चों को कुछ निर्देश दें तथा तख्ते पर रास्ता बनाकर बताएं कि कोई इस तरफ से एक नंबर वाले घर में गया। वहां से दो नंबर फिर तीन नंबर घर में पहुंचा। वहां से वापस इस रास्ते से निकल गया। कक्षा में ऐसे कौन चलकर बताएगा।

इस तरह इस गतिविधि को सरल से जटिल यानि तीन से चार फिर पांच तक घर बनाकर करवाया जा सकता है। हर बार गतिविधि करवाते समय बदल-बदल कर ज्यादा बच्चों को मौका दिया जा सकता है। जब बच्चे इसे आसानी से करने लगें तब इसी का जटिल रूप करवाया जा सकता है।
इसमें दो-दो की टोली बनाकर गतिविधि की जाएगी। एक टोली सदस्य कक्षा से बाहर जाएगा और दूसरा कक्षा में रहेगा, और देखता रहेगा कि शिक्षक कौन-कौन से घर (बस्ते) के पास से चलकर वापस अपनी जगह पहुंचा। अब ये छात्र बाहर से कक्षा में आए साथी को मौखिक निर्देश देकर उसी रास्ते पर चलने को कहेगा जिससे शिक्षक चले थे।

एक दूसरे को समझाने/निर्देश देने के दौरान बच्चों को बार-बार दाएं/बाएं, इस तरफ या उस तरफ एवं इसी से जुड़ी कई बातों के लिए तरह-तरह के संकेत/शब्द इस्तेमाल करने होंगे। इससे ही इनकी अवधारणा (समझ) भी स्पष्ट होती जाएगी।

नक्शा बनाओ के दौरान कक्षा का नक्शा, स्कूल का नक्शा, गांव का नक्शा या दूसरे गांव तक का नक्शा भी बनवाया जा सकता है।

यहां नक्शा बनाने से तात्पर्य भूगोल के नक्शे की तरह साफ नपा-तुला नक्शा बनाने से नहीं है बल्कि इसमें और कई सारी चीजें जुड़ी हुई हैं।

इनमें से कुछ हैं : अपने परिवेश (आसपास) के चित्र को समझना, उसे तख्ते/स्लेट पर उतार पाना, अवलोकन कर उसे नक्शे में स्थान दे पाना, उसके लिए चिन्हों का इस्तेमाल समझना, बनाना, फिर अपनी ही बनाई चीज को निर्देशों द्वारा दूसरे को समझाना आदि।

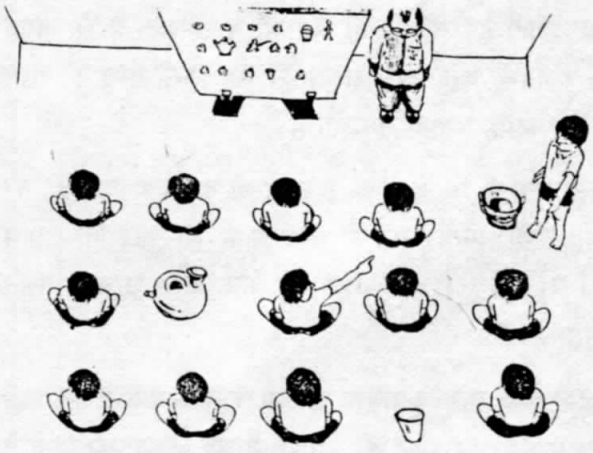

3. **मौखिक अवलोकन :-**

कक्षा में (चार-चार की टोली) चार टोली बनाकर कक्षा के बीचों-बीच चारों दिशाओं में मुंह कर के बैठाना। (ज़रूरी नहीं एक बार में कक्षा के सभी बच्चे टोलियों में शामिल हो जाएं।)

प्रत्येक टोली क्रमशः कक्षा के अंदर दिखने वाली किसी एक चीज का नाम बताए।

अगली टोली का सदस्य पास जाकर बताए कि वह वस्तु कहां है या उस वस्तु का रंग बताए। फिर अगली टोली का सदस्य उसका आकार बताए। लंबी, गोल, चौकोर या इस वस्तु के जैसी है, इससे बड़ी, इससे छोटी है।

उससे अगली टोली बताए ऐसी ही वस्तु और कहां-कहां मिलती है। उदाहरण पहली टोली सामने देखकर कहती है- तख्ता (ब्लेक बोर्ड)। अब दूसरी टोली का कोई सदस्य तख्ते के पास जाएगा और उसका रंग बताएगा।

-तीसरी टोली बताएगी - चौकोर, खिड़की से बड़ा, दरवाजे से छोटा।

-चौथी टोली बताएगी - ऐसा ही तख्ता दूसरी कक्षाओं और स्कूलों में भी है, या फिर काले रंग तथा चौकोर आकार की और वस्तु कहां देखी।

- फिर पहली टोली उस वस्तु के उपयोग के बारे में बताएगी। इसी तरह खेल जारी रहेगा।

4. विवरण सुनना :

यदि स्कूल से तुम्हारे घर जाना हो तो कैसे पहुंचोगे ? स्कूल से कितनी दूर है, रास्ते में कौन-कौन सी चीज़ें मिलेंगी ? कौन-कौन से पेड़, मंदिर, कुएं, नदी, नाले, घर आदि मिलेंगे ? कहां-कहां से मुड़ना होगा आदि ?

इसके अलावा तुम्हारा घर किसके घर के पास है, कितने पास, अनुमान से बताओ। यदि तुम्हें बाजार से सामान लेने जाना हो तो, कहां से और कैसे जाओगे। तुम्हें कितनी दूर जाना होगा। खेत जाना हो तो, यही प्रश्न कहां से, कैसे और कितनी दूर जाना होगा। बस स्टेंड, रेल्वे स्टेशन जाना हो तो आदि।

5. रोटी-रोटी या घर-घर का खेल:-

इस खेल में बच्चे आसपास उपलब्ध चीजों को लेकर बिखरा कर, जमाकर, किसी चीज को कुछ मान कर काल्पनिक घर बनाते हैं और घर की रसोई की सारी क्रियाएं दोहराते हैं। इस तरह के खेल स्कूल आने के पहले से खेलते हैं। इस खेल में छोटा-बड़ा, नापना, घर की व्यवस्था, वस्तुओं के स्थान आदि पर समझ साफ होती जाती है। यह खेल वे स्वेच्छा से सारी व्यवस्था खुद जुटाकर खेलते हैं। कक्षा से उन्हें खेलने की स्वीकृति मिलनी चाहिए।

6. गढ़ लूटो :-

इस खेल में एक बार में पंद्रह-सोलह बच्चे खेल सकते हैं। जितने भी बच्चे खेल रहे हों उस संख्या से दो-तीन कम पत्थर/ईंट दो—दो कदम की दूरी पर लाईन से जमा दो। दो बच्चे पत्थरों की लाईन के दोनों सिरों पर खड़े हो जाएं। शेष खेलने वाले बच्चे पत्थरों के पास के एक घेरे में तब तक दौड़ेंगे जब तक खिलवाने वाला लगातार ताली/घंटी बजाएगा। जैसे ही ताली/घंटी बजना बंद हो सभी बच्चों को दौड़कर एक-एक गढ़ (पत्थर/ईंट) पर खड़ा होना है। जिस बच्चे को गढ़ न मिले वह बाहर बैठ जाए। उसके बाद पुनः ताली/घंटी बजना शुरू होगी और बीच में से दो-तीन पत्थर हटा लिए जाएंगे। फिर जब ताली/घंटी बंद होगी बच्चों को दौड़कर गढ़ पर खड़ा होना है। जिसे गढ़ न मिले उसे खेल से बाहर बैठना होगा। हर बार दो पत्थर/ईंट के टुकड़े उठा लिए जाते हैं, जिससे गढ़ की संख्या कम होती जाएगी और आखिर में एक ही गढ़ बचेगा।

7. बोली-बोली (लंगड़ी) का खेल :

यह रूप्पे/गप्पे की मदद से खेला जाता है। चार-पांच बच्चों के बीच यह खेल होता है। इसमें रूप्पे को एक-एक कर निश्चित खानों में फेंकना होता है। उसके बाद एक पैर से चलते हुए दूसरी ओर तक जाना पड़ता है और फिर मुड़कर वापस आकर रूप्पे को उठाना होता है। इस पूरी क्रिया में किसी भी खाने की लाईन को छूने से आऊट माना जाता है।

इस प्रकार जब सभी खानों में रूप्पा फेंककर उठा चुके हों उसके बाद खानों को पार कर दूसरी ओर रूप्पा फेंकते हैं। बाहर फेंका रूप्पा उठा कर दूसरी तरफ निकल जाते हैं और रूप्पा फेंकते हैं। जहां पर रूप्पा आता है वह घर फेंकने वाले का हो जाता है। इस तरह से बारी-बारी से यह बच्चों के बीच खेला जा सकता है। इसमें बच्चों को मज़ा आएगा।

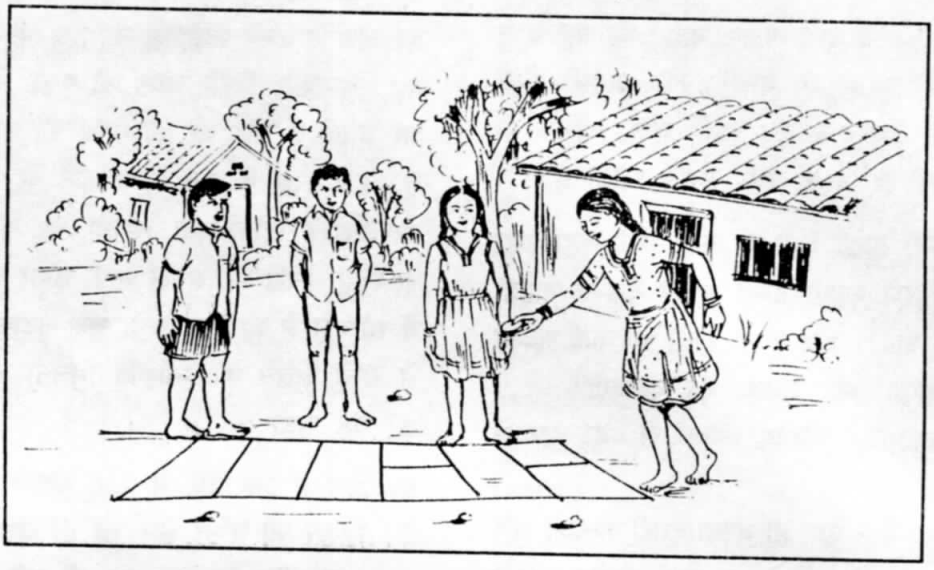

माचिस की तीलियों की मदद से विभिन्न आकृतियां बनवाना जैसे - घर, मछली, नाव, मोटर आदि।

कक्षा को घरों में (चाक से) बांटकर गतिविधि- कौनसी सामग्री घर में रहेगी कौनसी बाहर। सामग्री के लिए हम स्कूल के आसपास की सामग्री, बच्चों द्वारा बनाए मिट्टी के खिलौने, स्कूल की सामग्री, चित्र कार्ड आदि को शामिल कर सकते हैं।

8. खो—खो का खेल

9. रंगोली :

रंगोली के लिए रेत को रंगीन बनाकर इस्तेमाल कर सकते हैं।

10. चित्र बनाना :

कुछ विषय देकर उन पर चित्र बनाना। जैसे-घर, स्कूल, बाजार, आदि।

11. रेल का खेल :

रोल प्ले कराना, जिसे कक्षा में या मैदान में लाईन खींचकर उस पर (बच्चों की बनी) गाड़ी चलाना, बीच मे स्टेशन, पुल (पुल पर गाड़ी की ध्वनि का ध्यान रखना), झंडा, सिग्नल आदि का ध्यान रखते हुए गतिविधि करना।

अलग-अलग प्रकार की पत्तियों, तीलियों, कंकड़ आदि से तरह-तरह के पैटर्न बनाना।

12. लीडर ढूंढो :- सभी बच्चे घेरे में बैठकर इस गतिविधि को करते हैं। घेरे में से एक बच्चा दाम देने समूह द्वारा बताई जगह तक जाता है। तब तक समूह के सदस्य अपना एक लीडर तय करते हैं और रेडी बोलते हैं। दाम देने वाला बच्चा वापस आ जाता है। समूह वही एक्शन करता है जो लीडर करता है। दाम देने वाले बच्चे को ढूंढना होता है कि लीडर कौन है। लीडर को थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक्शन बदलना होता है। जब सही लीडर पकड़ में आ जाता है तो उसे दाम देने जाना पड़ता है। फिर पूरा समूह अपना लीडर चुनता है और गतिविधि चलती रहती है। इस गतिविधि के दौरान बच्चे को ध्वनि के आधार पर दिशा तय करके पहचानना/ढूंढना होता है कि कौन लीडर है।

जब भी कोई चीज बनानी हो या किसी जगह में चीजें रखनी हों तो हम चीजों की आकृतियों का उपयोग करते हैं। गोल मेज कमरे के कोने में नहीं फिट होगी, पलंग दीवार के साथ लगा सकते हैं। जब भी कुछ जोड़ के बनाना हो तो एक आकृति दूसरी आकृति के साथ किस प्रकार जुड़ सकती है, जुड़ने पर क्या आकृति बनेगी, इन प्रश्नों का उत्तर हम आकृतियों को उलट-पुलट कर देख, उन्हें समझ पाते हैं। बच्चों में इस समझ को उभारने के लिए कुछ गतिविधियां इस प्रकार हो सकती हैं-

1. टैनग्राम :

सात आकृतियां जो चपटी होती हैं, लकड़ी, प्लास्टिक आदि से बनी। इनसे बहुत सी आकृतियां बन सकती हैं।

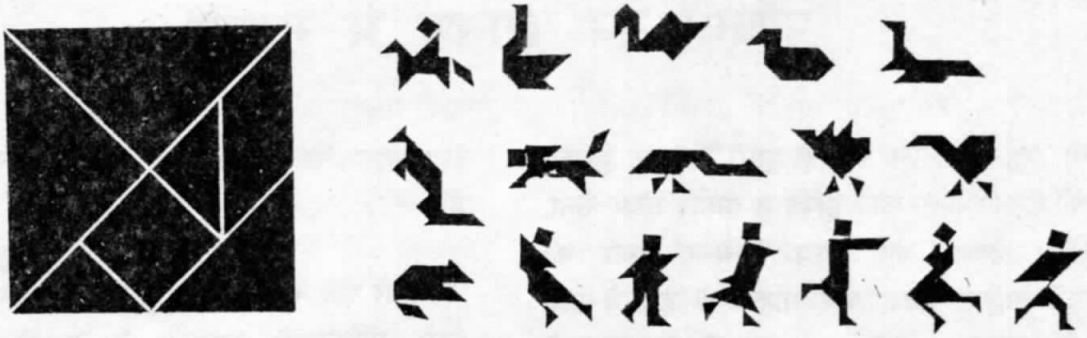

2. अलग-अलग प्रकार की पत्तियों को कागज़ पर चिपका कर ज़मीन पर बिछा कर चित्र बनाना/ पैटर्न बनाना/तीलियां/कंकड़/फूल आदि जमाकर अनेक आकृतियां बनाना।

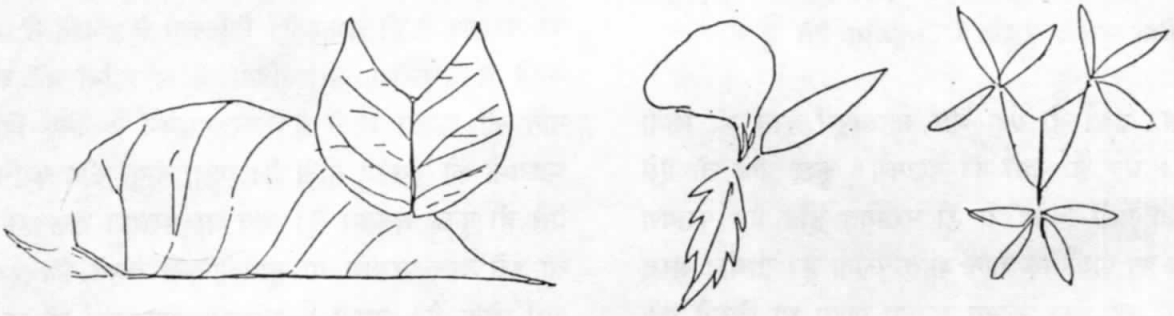

3. रंगीन कागज से विभिन्न आकृतियां काटकर, उन्हें कागज पर चिपका कर चित्र बनाना।
4. आकृतियां पहचानना व छांटना (त्रिकोण, चौकोर, गोल, अर्धगोल)। मिट्टी के खिलौने बनाना।
5. समान आकृति वाली चीजों को छांटना। वे चाहे सीधी रखी हों या घुमाकर या उल्टी ही।
6. क्रम में अलग साईज के कंकड़, तीलियां जमाना।
7. गत्ते या कागज की बनी आकृतियों की तुलना करना, उनमें अंतर पहचानना।
8. ब्लाक,गुट्टे, रूप्पे आदि से चीजें बनाना।

पक्षियों का परागण में महत्व

रंग बिरंगे, चहचहाते, एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकते पक्षियों को देखकर भला कौन हर्षित न होगा। तोता, मैना, फूल-चुकी, कोयल, और अन्य विभिन्न प्रकार की छोटी-बड़ी चिड़ियां सबका मन मोह लेती हैं। ये पक्षी प्रकृति की सुन्दरता में चार चांद लगा देते हैं। साथ ही अनेक प्रकार के हानिकारक कीटों से हमारी फसलों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार ये जैव नियंत्रण कर प्रकृति को संतुलित बनाये रखने में सहयोग देते हैं।

इन पक्षियों द्वारा ही एक और महत्वपूर्ण कार्य भी किया जाता है। वह है पौधों का परागण। कुछ पौधे तो ऐसे भी हैं जो पक्षी विशेष से ही परागित होते हैं। परागण की क्रिया का प्रायोगिक ज्ञान बहुत पुराना है। प्राचीन अरब में प्रतिवर्ष एक ऐसा उत्सव मनाया जाता था जिसमें एक व्यक्ति खजूर के नर पेड़ से एक पुष्पक्रम तोड़कर पुजारी को भेंट करता और पुजारी उसे मादा फूलों के पास ले जाकर हिलाता। ऐसा विश्वास था कि अच्छे व अधिक खजूर की उत्पत्ति के लिए यह एक आवश्यक क्रिया है।

इसी क्रिया को आज हम परागण के नाम से जानते हैं। पौधों में फल व बीज निर्माण के लिए यह एक अत्यंत आवश्यक क्रिया है। पुष्प के पराग कोष से परागकणों का निकलकर पुष्प के मादा भाग पर पहुंचना ही परागण कहलाता है। परागण की क्रिया दो प्रकार की होती है। जब पौधा स्वयं के परागकण से परागित होता है तो इसे स्वपरागण कहते हैं।

जब दूसरे पौधे के परागकणों से होता है तो यह पर-परागण (क्रास पोलिनेशन) कहलाता है। प्रकृति में सामान्यतः पर-परागण ही पाया जाता है। क्योंकि लैगिंक जनन का प्रमुख कार्य है, पौधों में विविधता लाना। विविधता पर-परागण से ही संभव है। विविधता से प्रजाति में सशक्त बनने व प्राकृतिक परिस्थितियों के परिवर्तनों को संभाल पाने की क्षमता आती है। पर-परागण के लिए विभिन्न माध्यमों की ज़रूरत होती है। जल, वायु, कीट व चिड़ियां ऐसे ही कुछ माध्यम है। जब पर-परागण जल द्वारा हो तो इसे जल-परागण या हायड्रोफिली कहते हैं। जिसका अर्थ होता है। "पानी में प्यार"। हवा द्वारा हो तो उसे ऐनिमोफिली यानि कि "हवा में प्यार" कहते हैं। और जब यही प्यार पक्षियों की मदद से हो तो इसे औरनिथोफिली कहते हैं।

पक्षियों द्वारा परागित होने वाले फूलों में कुछ विशेषताएं भी पायी जाती हैं। वे आकार में बड़े चटकीले रंग के होते हैं। इन फूलों में सुगंध नहीं होती, क्योंकि पक्षियों की सूंघने की शक्ति बहुत ही क्षीण होती है। इनमें मधु काफी मात्रा में पाया जाता है। ये पक्षी मधु की तलाश में ही इन फूलों पर जाते हैं। मधु विशेष प्रकार की

मादा फूल पर गिरते पराग कण
वर्तिकाग्र से अंडाशय तक पहुंचने का रास्ता

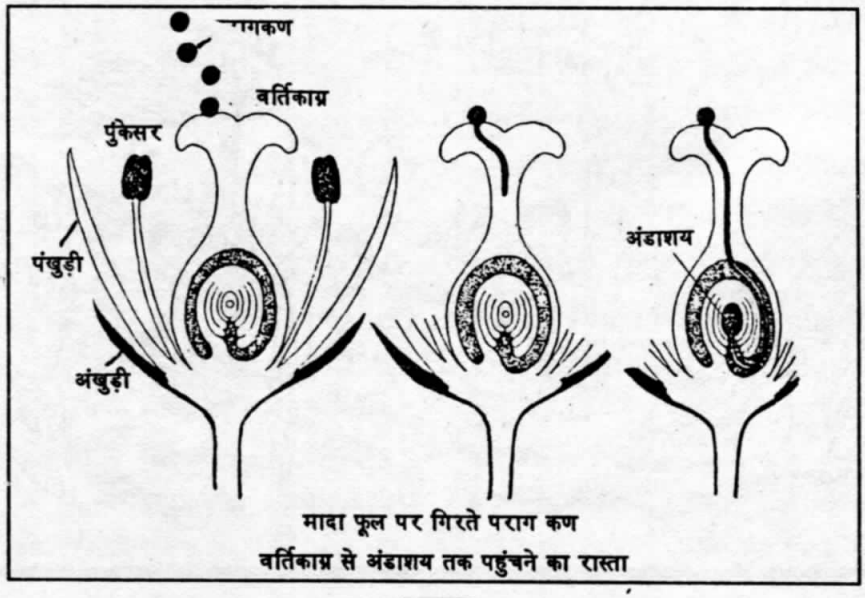

ग्रंथियों, जिन्हें "नेक्टरी" कहते हैं, में बनता है। इनकी ऊपरी सतह छिद्रमय होती है, जिससे मधु निकलता रहता है। नेक्टरी की सतह चमकदार व चिपचिपी होती है। मधु का रंग हल्का पीला या हरा होता है। कुछ पौधों में नेक्टरी को बड़ी आसानी से देखा जा सकता है जैसे यूफोरबिया में क्योंकि इसमें इन्हें छुपाने के लिए पंखुड़ियां नहीं होतीं। इस पौधे में मकरंद का उत्पादन इतना अधिक होता है कि पक्षी तक इसे प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ फूलों में ही इस प्रकार की विशेषताएं पायी जाती हैं। पर-परागण करने वाले पक्षियों में भी कुछ विशेषताएं होती हैं। उनकी जीभ आगे की ओर से द्विशाखित नली है। जिससे इन्हें मकरंद चूसने में आसानी होती है। पर्पल सनबर्ड की चोंच पतली व मुड़ी होती है, जो मधुपान के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। इनकी दृष्टि बहुत ही तेज होती है। और ये दूर से ही फूलों को पहचान लेते हैं। सुर्ख लाल व नारंगी रंग इन्हें अधिक रूचिकर लगते हैं।

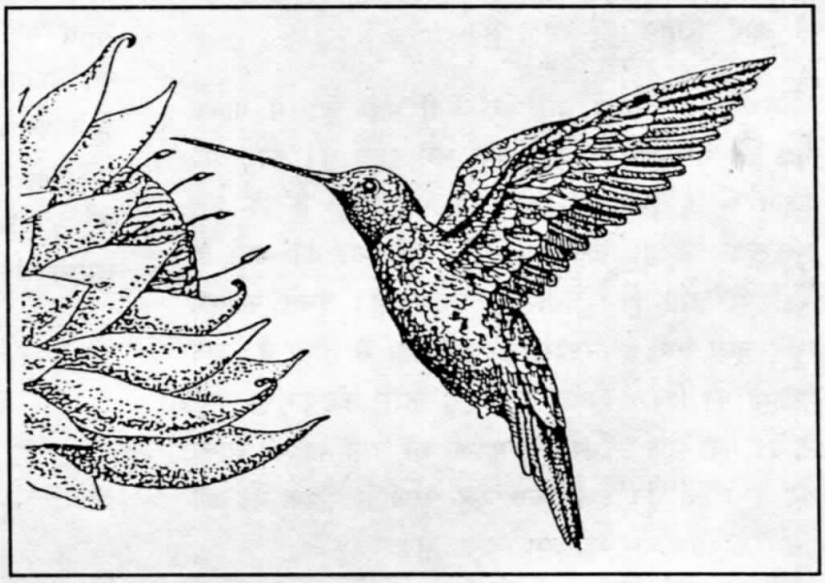

ये चिड़ियाएं उन्हीं फूलों पर जाती हैं जिनमें मकरंद काफी मात्रा में होता है. केले के प्रत्येक नर पुष्प में 150 ग्राम मकरंद तथा भालालिली के पुष्प से एक छोटा गिलास भर मकरंद प्राप्त किया जा सकता है। अमेरिका में पाये जाने वाले पौधे "इरिथ्रिना क्रिस्टेजली" को "रोने-वाले बच्चे" के नाम से जाना जाता है। क्योंकि इसमें इतना अधिक मकरंद होता है कि ठीक उसी प्रकार टपकता है, जैसे रोने वाले बच्चे के मुंह से लार। हमारे यहां भी इसे सुंदर फूलों के लिए बगीचों व सड़कों के किनारे लगाया जाता है। मार्च-अप्रैल में इस पर गहरे लाल रंग के फूलों की बहार आती है।

फूलों के मधु में काफी मात्रा में कार्बोहायड्रेट पाया जाता है। जिससे यह पौष्टिक होता है। बेकासिया नामक पौधे में इतना मधु होता है कि आस्ट्रेलिया के निवासी इसे भोजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। पक्षियों की कुछ जातियां तो मधु पर ही जीवित रहती हैं।

भनभनाने वाली चिड़िया (हमिंग बर्ड), मधुपान करने वाली चिड़िया (हनी थ्रेशस), शकर-खौरा (सन बर्ड) तथा फूल-चुकी (टिकेल) वे सामान्य चिड़ियाएं हैं जिनके द्वारा पौधों में पर-परागण होता है। बिगनोनिया पक्षियों द्वारा परागित होने वाला पौधा है। इसके फूल गहरे-पीले या सिंदूरी रंग के होते हैं। पुष्प के दल पुंज मिलकर एक नलिकानुमा रचना बनाते हैं, जिसके आधार पर मकरंद रहता है। यह नलिका इतनी लंबी होती है कि केवल बड़ी चोंच वाली चिड़ियां ही वहां से मकरंद प्राप्त कर सकती हैं। जब ये अपनी चोंच पुष्प नलिका के अंदर डालती हैं तब बाहर निकले हुए पुंकेसर से परागकण उसके सिर पर चिपक जाते हैं। मकरंद की तलाश में जब यह चिड़ियां बिगनोनिया के अन्य फूलों पर जाती है तो परागण की क्रिया स्वतः ही संपन्न हो जाती है।

बोतल ब्रश (किलिस्टमोन) में परागण हमिंग बर्ड के द्वारा होता है। इसके फूलों का रंग लाल व आकार प्याले के समान होता है। जिसमें पराग भरा रहता है। जिसने भी इस पौधे को बहार में देखा हो वह इसे भुला नहीं सकता।

जैसा कि इसके नाम से ही लगता है इसका पुष्पक्रम बोतल साफ करने के ब्रश के समान होता है। ये बाल जैसी रचनाएं वास्तव में पुकेसर होते हैं। जो लंबे, खड़े व गहरे लाल रंग के होते हैं। यह पौधा भी आस्ट्रेलिया का मूल निवासी है। इसे बगीचों में सुन्दरता के लिए लगाया जाता है। जब कोई पक्षी मधुपान करने आता है तो उसकी चोंच पर इसके परागकण चिपक जाते हैं। ये चिड़ियां जब दूसरे फूलों पर जाती हैं तो परागकण पुष्प के मादा भाग पर चिपक जाते हैं और परागण हो जाता है।

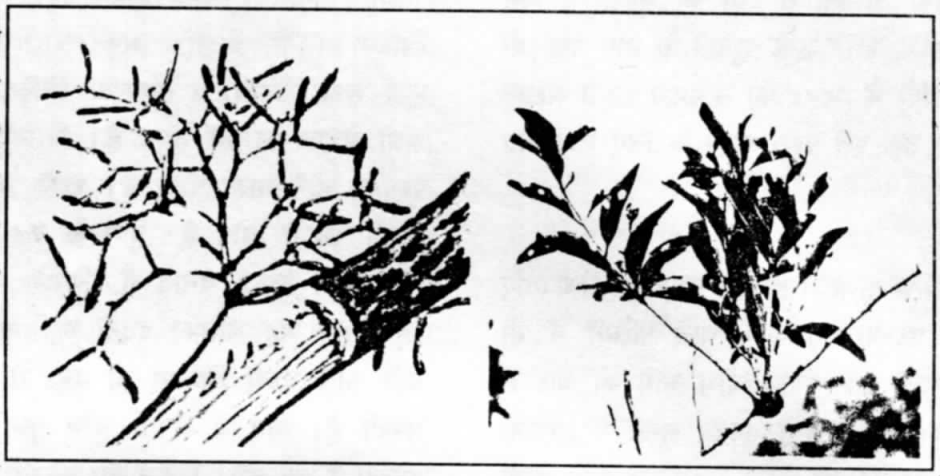

लोरेन्थस व विस्कम वृक्ष पर-जीवी पौधे हैं। ये पोषक वृक्ष की शाखाओं पर यहां-वहां लगे रहते हैं। और यदि ध्यान से न देखा गया तो ऐसा भ्रम होता है कि यह मूल वृक्ष की ही कोई शाखा है। लोरेन्थस को आम के पेड़ों पर लगा हुआ देखा जा सकता है। इनमें परागण फूल-चुकी तथा शकरखौरा की सहायता से होता है। इन पक्षियों की विशेषता यह है कि ये फलों को समूचा नहीं खाते। गूदा खाकर चिपचिपी गुठली को उसी पेड़ की शाखा पर लगा देते हैं। इस प्रकार यह परजीवी पोषक पेड़ की विभिन्न शाखाओं पर लग जाता है।

सेमल (सिल्क काटन) भी पक्षियों द्वारा परागित होने वाला पेड़ है। पलाश की तरह ही इसमें भी फरवरी-मार्च के महीने में बहार आती है। चटख लाल बड़े-बड़े फूलों से लदा ये पत्ती विहीन पेड़ बहुत आकर्षक लगता है। इसके पुष्प के सभी भाग मांसल तथा श्लेषमयी होते हैं। फूल के रंग से आकर्षित होकर इसको खाने के लिए पक्षी इस पर जाते हैं। खाने की क्रिया के दौरान, इसके परागकण पक्षियों की चौंच व सिर पर लग जाते हैं। जब ये पक्षी अन्य पेड़ों पर जाते हैं तो स्वतः ही उनका परागण हो जाता है।

दियासलाई की तीलियां बनाने के लिये सेमल की लकड़ी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसकी रेशमी रूई भी गादी-तकिये भरने के काम में आती है। जो बहुत ही उच्चकोटि की होती है। सेमल, केकासिया तथा दूसरे अन्य पेड़ जिनका परागण पक्षियों द्वारा ही होता है, की संतति बनाये रखने में पक्षियों का बहुत बड़ा योगदान है। इन पक्षियों के बिना ऐसे पेड़ों का जीवन-चक्र पूरा ही नहीं हो सकता। जीवन-चक्र पूरा होने पर ही फल व बीजों का निर्माण होता है जिनसे नये पौधे उत्पन्न होते हैं। अतः हमें चाहिये कि इन पक्षियों को जो कि प्रकृति का अभिन्न अंग हैं, संरक्षण दें। ये हमारी प्रकृति की अनुपम व अमूल्य धरोहर हैं।

डॉ.किशोर पवार
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सेंधवा, म.प्र.

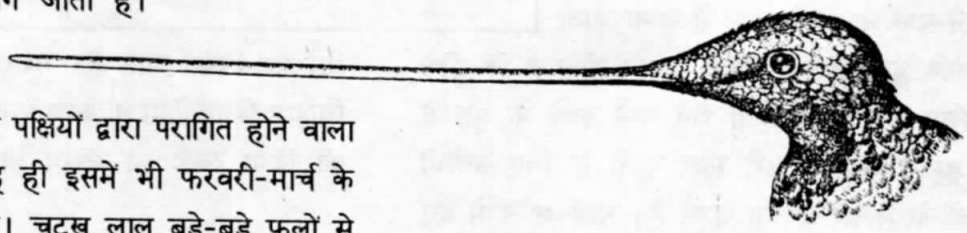

बालकेंद्रित शिक्षा

अरविंद गुप्ते

प्राचार्य, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, उज्जैन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का प्रमुख उद्देश्य शत प्रतिशत साक्षरता को प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नानुसार रणनीति अपनाई गई है :

1. 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को औपचारिकेतर शिक्षा केंद्रों या औपचारिक शालाओं में भर्ती करना तथा उनके शाला त्याग को रोकना।
2. प्रौढ़ शिक्षा को अधिक व्यापक तथा सार्थक बनाना।

बच्चों को औपचारिकेतर शिक्षा केंद्रों और शालाओं की ओर आकर्षित करने का प्रमुख साधन बालकेंद्रित शिक्षा है। स्वाभाविक ही है कि आजकल बालकेंद्रित शिक्षा की बहुत चर्चा है।

शिक्षकों में प्रायः यह धारणा पाई जाती है कि बालकेंद्रित शिक्षा कोई नई चीज़ है। सच तो यह है कि अच्छे शिक्षक प्राचीन काल से ही शिक्षा को अपने-अपने ढंग से बालकेंद्रित बनाते रहे हैं। जिस शिक्षक-केंद्रित शिक्षा को आजकल शिक्षा का अभिशाप माना जा रहा है वह तो केवल एक विकृति है। इसे शिक्षा-शास्त्र के किसी भी सिध्दांत के अंतर्गत मान्यता नहीं दी गई है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगा कि जो शिक्षा बालकेंद्रित नहीं है वह शिक्षा ही नहीं है।

जब जब बालकेंद्रित शिक्षा की चर्चा होती है तब प्रायः शिक्षण- विधि पर ही जोर दिया जाता है और यह मुद्दा अनदेखा हो जाता है कि बालकेंद्रित शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पहलू शिक्षण विधि न हो कर शिक्षक की अभिवृत्ति है। प्रत्येक विषय के अध्यापन की अपनी विशिष्ट विधि होती है, किंतु विषय कोई भी हो, शिक्षक की उचित अभिवृत्ति एक बुनियादी आवश्यकता होती है। यदि शिक्षक के मन में बच्चों के प्रति प्रेम, मैत्री-भाव और समादर की भावना न हो तो बालकेंद्रित शिक्षा की शुरूआत ही नहीं हो सकती।

बालकेंद्रित शिक्षा का पहला कदम इस पुरातन धारणा को तोड़ना है कि शिक्षक-रूपी ज्ञान के झरने का एकमात्र कार्य छात्र-रूपी खाली घड़ों को भरना है। न तो शिक्षक ज्ञान का झरना होता है और न छात्र खाली घड़ा। हर बच्चे का सोचने का अपना ढंग होता है, कुछ अपने अनुभव होते हैं। इस सोच और अनुभव को आधार बनाकर ही शिक्षक और छात्र दोनों की सीखने की प्रक्रिया में भागीदारी हो सकती है। इसमें शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक की होनी चाहिए, ना कि सब कुछ जानने वाले, सब कुछ सही करने वाले और सदा सही बोलने वाले सर्वज्ञाता की।

जब बच्चे सीखने की प्रक्रिया में केवल निष्क्रिय पात्र बने रहने के स्थान पर सक्रिय भागीदार बनते हैं और शिक्षक तथा छात्रों की भूमिका में परिवर्तन होता है तब निश्चय ही कक्षा में होने वाली परस्पर क्रिया में निम्नलिखित नए आयाम जुड़ जाते हैं :

1. छात्रों द्वारा प्रश्न पूछना

स्वाभविक है कि जब सीखने वाले सक्रिय हो जाएंगे तो वे शिक्षक से प्रश्न भी पूछेंगे। किसी कक्षा में छात्रों के द्वारा पूछे गए प्रश्नों की संख्या को सीधे-सीधे बालकेंद्रित शिक्षा का सूचकांक माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि किसी कक्षा में हो रहे शिक्षण को छात्रों के द्वारा पूछे गए प्रश्नों की संख्या के अनुपात में बालकेंद्रित माना जा सकता है।

इस कथन के साथ एक सावधानी जोड़ देना आवश्यक है। यदि छात्र अधिक प्रश्न पूछते हैं तो स्वाभाविक ही है कि कुछ प्रश्न सार्थक होंगे और कुछ निरर्थक। बालकेंद्रित शिक्षा में यह शिक्षक का दायित्व होता है कि पहले तो वह बच्चों को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करें और फिर उनमें प्रश्नों की सार्थकता और निरर्थकता पहचानने की क्षमता विकसित करें।

2. शिक्षक के ज्ञान की सीमा

जब बच्चे अधिक प्रश्न पूछना प्रारंभ करेंगे तब शीघ्र ही शिक्षक के ज्ञान की सीमा आ जाएगी और उसके पास कई प्रश्नों के उत्तर न होंगे। बालकेंद्रित शिक्षा का तकाज़ा है कि ऐसी स्थिति में शिक्षक अपना अज्ञान निसंकोच स्वीकार करें। यह आश्चर्यजनक किंतु सत्य है कि छात्र, चाहे वे छोटे हों या बड़े, ऐसे शिक्षक का अधिक सम्मान करते हैं जो यह कह सके, "मुझे इस प्रश्न का उत्तर पता नहीं।"

किंतु शिक्षक का दायित्व यहीं समाप्त नहीं हो जाता। जिन प्रश्नों के उत्तर उसके पास नहीं हैं उन्हें खोजने और छात्रों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी भी उसी की है।

3. कक्षा में चर्चा

शिक्षक के द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के साथ एक भिन्न प्रकार का पहलू जुड़ा हुआ है। शिक्षक जब कक्षा में प्रश्न पूछता है तब कुछ ही बच्चे उत्तर देने के लिए तत्पर होते हैं। ये बच्चे या तो हाथ उठा कर शिक्षक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं या फिर अपने आप उत्तर दे देते हैं। शिक्षक भी प्रायः इन्हीं से उत्तर पा कर संतुष्ट हो जाता है।

शिक्षक के द्वारा प्रश्न पूछने का सही तरीका यह है कि प्रश्न को कक्षा में छोड़ दिया जाए और यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि उसे हर बच्चे ने समझ लिया है। यदि आवश्यक हो तो प्रश्न को दोहरा कर स्पष्ट किया जाए। इसके बाद छात्रों से कहा जाए कि प्रश्न का उत्तर वे सब सोचें। अब बच्चों को बारी बारी से उत्तर देने को कहा जाए।

इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उत्तर देने का अवसर प्रत्येक बच्चे को मिले और उत्तर देने के लिए ऐसे बच्चों को भी प्रेरित किया जाए जो प्राय. कक्षा में हो रही परस्पर क्रिया में भाग नहीं लेते। शिक्षक के लंबे और सहानुभूतिपूर्ण प्रयासों से ही बच्चों का संकोच टूट पाएगा। यह भी आवश्यक है कि किसी भी बच्चे के द्वारा गलत उत्तर दिए जाने पर उसे डांटने, उसका मजाक उड़ाने या उसे सजा देने के स्थान पर उसके तर्क को समझने का प्रयास किया जाए और सही उत्तर इस प्रकार बताया जाए कि उसे अपमानित न होना पड़े।

4. कक्षा में अनुशासन

कक्षा में अनुशासन यानि "सुईपटक सन्नाटा" यह अवधारणा बालकेंद्रित शिक्षा में समाप्त हो जाना चाहिए। यदि किसी कक्षा में छात्र गतिविधि कर रहे हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे हैं और आपस में चर्चा कर रहे हैं तो इसका अर्थ स्वयं ही यह नहीं हो जाता कि कक्षा में

अनुशासन नहीं है। कक्षा में अनुशासन है या नहीं इसका निर्णय इस आधार पर किया जाएगा कि कक्षा में जो

गतिविधि, जो आवा-जाही, जो बातचीत हो रही है वह सीखने की प्रक्रिया में सहायक है या नहीं। यदि इस सब हलचल से सीखने की प्रक्रिया में मदद मिल रही है तो कक्षा अनुशासित है। यदि गतिविधि और शोर निरर्थक है तो कक्षा में अनुशासन नहीं है।

आइए, इसके विपरीत परिस्थितियों के कुछ उदाहरण देखें। शिक्षक के भय के कारण कक्षा में पूरी तरह चुप्पी है और छात्र या तो हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं या पुस्तक के अंश अपनी कापी में उतार रहे हैं जिसे शिक्षक कभी जांचेगा नहीं। एक अन्य कक्षा में एक छात्र खड़ा हो कर पुस्तक पढ़ रहा है किंतु उसकी ओर न तो शिक्षक ध्यान दे रहा है और न उसके सहपाठी। दोनों परिस्थितियों में यद्यपि कक्षा में शोर नहीं हो रहा है फिर भी चूंकि सीखने की प्रक्रिया भी नहीं हो रही है अतः कक्षा में अनुशासन नहीं है।

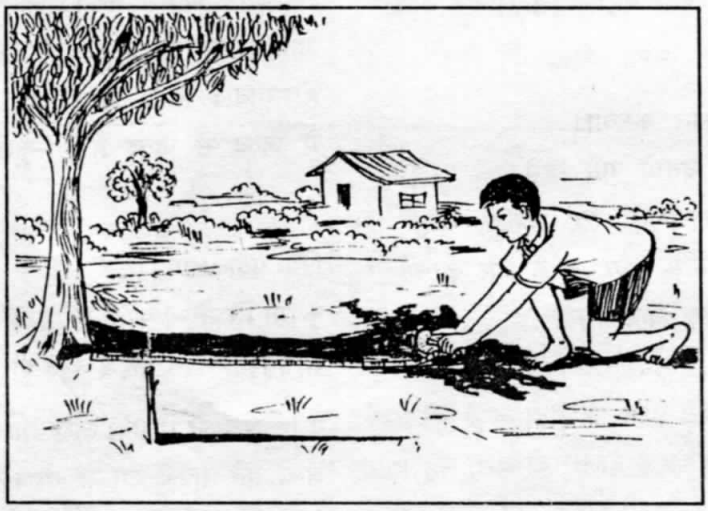

पुरानी धारणा के अनुसार अनुशासन केवल सीखने वालों के व्यवहार से परिभाषित होता था। बालकेंद्रित शिक्षा में शिक्षक का व्यवहार भी अनुशासन की परिधि में आता है।

5. शिक्षक की सक्रियता

उदाहरणों की सहायता से समझना उचित होगा। कल्पना कीजिए कि कक्षा में विज्ञान का शिक्षण हो रहा है। छात्र प्रयोग और अवलोकन कर रहे हैं। पहले तो शिक्षक को पूरी कक्षा में घूमकर यह देखना होगा कि प्रयोग सही ढंग से हो रहे हैं या नहीं? कोई गलती या असावधानी तो नहीं हो रही? यदि किन्हीं छात्रों के अवलोकन अन्य छात्रों के अवलोकनों से भिन्न हैं तो ऐसा क्यों हो रहा है? आदि। प्रयोग समाप्त होने पर कक्षा में चर्चा करवाने और छात्रों को सही निष्कर्ष पर पहुंचाने के लिए भी शिक्षक का सक्रिय होना आवश्यक है।

यदि कक्षा में सामाजिक अध्ययन का शिक्षण हो रहा है तो एक सतर्क एवं सक्रिय शिक्षक छात्रों को परिभ्रमण पर ले जा सकता है, उनके पूर्वज्ञान और उन्हें दिए गए दत्तकार्य के आधार पर इस प्रकार चर्चा करवा सकता है कि सभी छात्र उसमें भाग लें और उचित निष्कर्ष पर पहुंचें।

इसी प्रकार भाषा हो या गणित या अन्य कोई विषय, शिक्षण की प्रक्रिया सही ढंग से तभी चल सकती है जब शिक्षक का वाणी, दृष्टि, श्रवण एवं क्रिया इन चारों माध्यमों से पूरी तरह कक्षा से संपर्क बना रहता है।

खत सवालीराम के

सवालीराम जी नमस्ते
इस विज्ञान को पढ़ने का हमारा यह आखिरी वर्ष है। मैं इस वर्ष भी आपसे कुछ सवाल करूंगा।
हमें यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि इस साल के प्रयोग सरल हैं व प्रयोग का सामान सस्ता है। लेकिन हर साल की तरह इस बार भी हमें परिभ्रमण पर नहीं ले जाया गया। मैने आपसे छटवीं और सातवीं में पत्र लिखकर कहा था कि हमें परिभ्रमण पर नहीं ले जाया गया।

इस बार आपसे कुछ प्रश्न हैं :

(अ) छिपकली की पूंछ कटने के बाद भी क्यों हिलती है?

(ब) मरने के बाद भी आदमी के बाल क्यों बढ़ते हैं?

ये प्रश्न पाठ्य पुस्तक के नहीं हैं। लेकिन मेरा मतलब सजीव-निर्जीव से है। छिपकली की पूंछ कटने के बाद भी सजीव रहती है क्या? क्या इसमें आत्मा होती है, अगर छिपकली की पूंछ में आत्मा है तो छिपकली क्यों नहीं मरती?

मरने के बाद मनुष्य के अंग क्यों नहीं बढ़ते लेकिन बाल क्यों बढ़ते हैं?

अब मैं पाठ्य पुस्तक से प्रश्न करूंगा।
हमें कुछ चीजों के घनत्व बताये गये जैसे :
पानी, बर्फ, एल्यूमिनियम, आलपिन, रेत, लकड़ी, लोहा, सोना, चांदी, मिट्टी का तेल, मोम, रबर, कार्क और कांच। हमारी कक्षा में इसका प्रयोग किया गया।

टीचर व विद्यार्थियों के बीच इस प्रश्न पर बड़ी चर्चा हुई। विद्यार्थी कहते हैं कि जो वस्तु पहले डालेंगे वो वस्तु पहले डूबेगी। इस चर्चा में अभी कोई भी उत्तर नहीं निकला है। अब आप बतायें इस प्रश्न का सही उत्तर क्या है? हमारी कक्षा में जब कभी प्रयोग नहीं हो पाते हैं तो लड़के व लड़कियां आपको दोषी ठहराते हैं, कहते हैं कि इस प्रकार के प्रयोग दिये हैं तो थोड़ी मदद करनी चाहिए, क्या आप प्रयोग में हमारी मदद कर सकते हैं।
आपके और नये सुझावों के इन्तज़ार में।

कक्षा 8 का एक विद्यार्थी

हमारे यहां ग्राम जासलपुर में आठवीं कक्षा तक स्कूल है। हमारे गांव की लड़कियां आगे पढ़ना चाहती हैं। परन्तु यहां आगे पढ़ने के लिए स्कूल उपलब्ध नहीं है और लड़कियां आठवीं कक्षा तक पढ़कर स्कूल छोड़ देती हैं. अतः शासन से अनुरोध है कि हमारे ग्राम जासलपुर, जो होशंगाबाद से 7 कि.मी. दूर पिपरिया रोड पर स्थित है, में जल्द से जल्द हाई स्कूल खुलवाने का प्रयत्न करें।

जासलपुर की छात्राएं

प्रिय सवालीराम,
कृपया मेरे निम्न प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें। बहुत दिनों से इनको पूछने की इच्छा थी पर पत्र अब लिख रहा हूं।

प्र.1. आकाश मे एक तारा लाल रंग से चमकता है। जबकि अन्य तारे सफेद रंग से चमकते हैं ऐसा क्यों होता है।

प्र.2. कुकुरमुत्ता हर कहीं क्यों उग आता है। इसके बीज कैसे होते हैं।

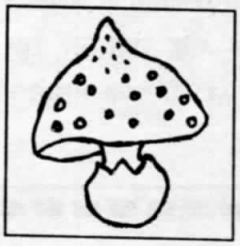

जितेन्द्र कुमार शुक्ला
शा.बहु.उ.मा.शाला हरदा

बच्चे खेल से क्या सीखते हैं ?

"खेलना बच्चों का काम है", "उन्हें खेल में ही मजा आता है", आमतौर पर हमारी और आपकी यही धारणा है। इसीलिए हमारे लिए खेलने का मतलब "सीखना" नहीं है। और हम मानते हैं कि बच्चे के लिए पढ़ना ही सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है। इसका कारण भी यही है कि हमें लगता है कि खेलना मात्र मनोरंजन है और इससे बच्चे कुछ नहीं सीखते। खेलने और सीखने में इस खाई के कारण ही बच्चों को हमेशा टोक-टोक कर पढ़ने बिठाया जाता है।

हमें अक्सर घरों से इस तरह की बातचीत सुनने को मिलती है "अब तक तो बच्चा खेल ही रहा था अभी पढ़ने बैठा है।" जैसे कि खेलना खत्म करने के बाद पढ़ना शुरू करने पर ही उसने सीखना शुरू कर दिया है। क्या यह सही है? क्या खेलने और सीखने को इतने अलग-अलग दायरों में देखना उचित है?

एक बार मैं रेलगाड़ी से यात्रा कर रही थी। पास में ही चार-पांच वर्ष का एक बालक बैठा था, जो ए-बी-सी की पुस्तक बोल-बोल कर याद करने में लगा था। पुस्तक शायद सामान्य प्रवेशिका थी। यानी ए फॉर एपल आदि, चित्र और प्रत्येक चित्र के नीचे उसका नाम।

पढ़ते-पढ़ते वह बालक टी तक आया - टी फॉर ट्री। और बाहर देखते-देखते बोला "देखो-देखो टी फॉर ट्री"। पिताजी वह देखो टी फॉर ट्री। पिताजी को गुस्सा आ गया और वे झल्ला कर बोले "क्या देख रहा है बाहर।" बच्चे ने कहा - ट्री-ट्री। पिताजी ने डांट लगाई और बोले "चल पढ़। दस मिनट भी नहीं पढ़ सकता।" और बच्चा फिर से ए फॉर एपल रटने लगा।

ऐसे कितने ही अनुभवों से हम सब गुजरते रहते हैं। मुझे लगा बच्चे पर पढ़ने के लिए इतना दबाव उचित नहीं था और आसपास की चीजों को किताब से जोड़ने की स्वाभाविक जिज्ञासा को टोकना तो बिल्कुल ही गलत। शायद इस खास परिस्थिति में इस बात से बहुत लोग सहमत हो जाएंगे। लेकिन क्या हम आमतौर पर बच्चों की स्वाभाविक क्रियाएं (आसपास की चीजों की उठा पटक करना, अलग-अलग खेल खेलना आदि) देखकर उन्हें समझने की कोशिश करते हैं?

क्या हम यह देखने की कोशिश करते हैं कि बच्चे अपनी गतिविधियों से क्या-क्या सीख रहे हैं और वह खेल-खेल में कितनी बातें सीखते हैं?

अगर हम अपने बचपन के खेलों पर गहरी नजर डालें तो पाएंगे कि हमने अपनी जिंदगी की बहुत सारी बातें खेलों से ही सीखी हैं। शायद जितना और तरीकों से सीखा है उससे ज्यादा ही।

बचपन में हममें से बहुतों ने गुड्डे-गुड़ियों का खेल खेला होगा। आमतौर पर इनके उपयोग से बच्चे घर-घर खेलते हैं। आज भी यदि बच्चों को खेलते देखें तो पाएंगे कि काफी ज्यादा बच्चे यह खेल खेलते हैं। इस खेल में बच्चे अपने आसपास की दुनिया

के नियम समझने की कोशिश करते हैं, परिवार वालों के पारस्परिक संबंधों को समझते हैं और न जाने कितनी बातें सीखते हैं।

इस खेल में घर के सदस्य बनाने के बाद घर व घर में उपलब्ध चीजें ढूंढ़ना व बनाना होता है। इसके लिए खेल की जगह में कुछ हिस्सा रसोई बन जाता है कुछ हिस्सा बैठक और कुछ हिस्सा बाकी कुछ और। रसोई में शीशी के ढक्कन, टूटे बर्तन या अन्य सामान अलग-अलग तरह के बर्तनों का काम देते हैं।

इस खेल में बच्चे विभिन्न वस्तुओं के गुण व विभिन्न क्रियाएं (उदाहरण - आटा गूंथना, रोटी बनाना, दाल बघारना आदि) दोहराते हैं। और साथ ही चीजों के आकार में समानताएं पहचानने लगते हैं। जैसे कटोरी के स्थान पर गोल ढक्कन जिसमें कुछ रखा जा सकता है, लंबी-लंबी छड़ें चम्मच बन जाती हैं, टूटे घड़े के बड़े टुकड़े थाली का रूप धारण कर लेते हैं, इसी तरह कुर्सी-मेज आदि बनाने में माचिस की सिगरेट की खाली डिब्बियां खूब मदद करती हैं। कई बार बच्चे कुर्सी को वास्तविकता के ज्यादा करीब बनाते हैं। एक ही लंबाई की चार लकड़ियां ढूंढ़ कर उन पर माचिस का खोखा जमाया जाता है।

बच्चे एक ओर तो एक छड़ को ही अपनी कल्पना द्वारा ट्राली बनाकर ट्राली के चलने की आवाज की नकल करते हैं। दूसरी ओर वे यह भी कोशिश करते हैं कि कैसे उस वस्तु से ज्यादा से ज्यादा करीब का मिलता हुआ माडल बनाएं।

इस सबमें बच्चे की स्मरण शक्ति का, चीजों के गुण पहचानने का, चीजों में अंतर करने का, चीजों को जमाने में हाथों के संतुलन का और इसके अलावा उनके कई और गुणों का विकास होता है। वह खेल में चीजों को देखी हुई चीज जैसा ही रूप देना चाहता है। आंगन में पौधे और उन पर फूल, उसके चारों ओर बाड़ (इसके लिए एक ही लंबाई की लकड़ियों को इकट्ठा करके चारों ओर लगाया जाता है) और घास। घास बनती है फूलों के टुकड़ों, गुठलियों, पत्तियों से मिलजुलकर। इस खेल में वह फूल को, उसके रंग, आकार को पहचानना, पत्ती के रंग, उसके आकार को देखना सीखता रहता है।

घर में कौन क्या बनेगा और इसका प्रारूप बनाने के बाद काम का बंटवारा होता है। घर का कौन कौन सा काम बाहर का है, पढ़ना, खेलना, बगीचे की देखभाल आदि आदि सब काम बांटे जाते हैं। और फिर हर काम का क्रम व समय निश्चित किया जाता है। सुबह हो गई, मां रसोई में है, बच्चे अभी उठे नहीं और बाकी सब भी क्या-क्या कर रहे हैं, सब का हिसाब रखना है। फिर खाना बनाने के बाद परोसना और खाना। तरल पदार्थों के लिए कटोरीनुमा बर्तन और इसी तरह बाकी सब खाने को भी उपयुक्त बर्तनों में डाल कर परोसना।

इसके अलावा अपने आसपास के परिवेश के अनुसार वेशभूषा (कपड़े, आभूषण आदि की नकल), बातचीत, झगड़े व डांट-डपट। सब कुछ वैसा ही जैसा वे यथार्थ में देखते हैं और उसके अलावा उसमें अपनी कल्पना का पुट और जोड़ देते हैं।

यह सब खेलते समय बातचीत भी खूब होती है और एक दूसरे को समझाने की, खेल के नियम तय करने की भरपूर कोशिश होती है। और यह बहुत महत्वपूर्ण है बच्चे को अपनी भाषा को समझने के संदर्भ

में, अपनी अभिव्यक्ति विकसित करने में और नए-नए शब्दों को सीखने के मौके के लिए।

इससे कुछ बड़ी उम्र के बच्चों को गेंद से खेलने में बहुत मजा आता है। गेंद को उछालना, टप्पा लगाकर पकड़ना, गेंद लपकना, गेंद से निशाना लगाना, इन सबको मिलाकर वह कितने ही खेल खेलते हैं। इनमें से एक खेल पिट्ठू हम उदाहरण के रूप में लेते हैं। सात गोल (या चौकोर) पत्थर/लकड़ी के टुकड़े लेकर उन्हें एक के ऊपर एक जमाते हैं। फिर इसे गेंद से निशाना लगाकर तोड़ा जाता है।

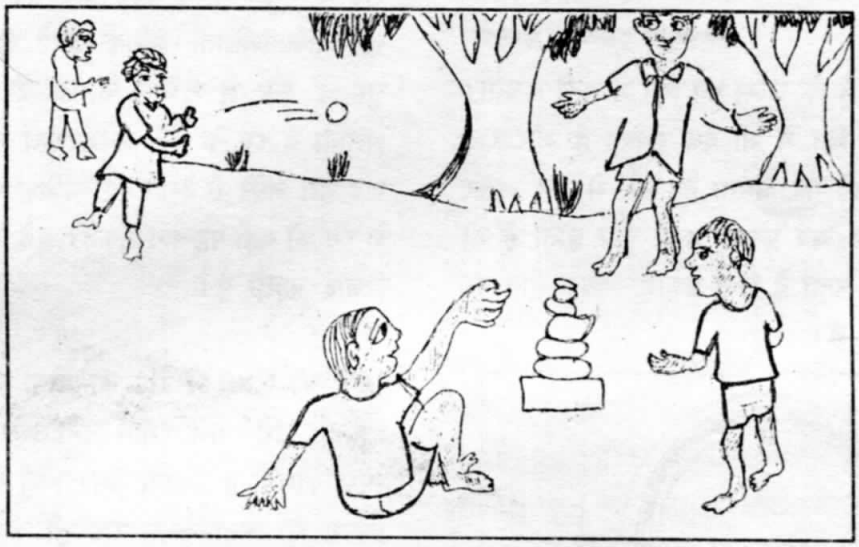

पिट्ठू पर ध्यान केंद्रित कर, उसे गेंद से फोड़ने में कितने ही अंगों का योगदान होता है। और सब तालमेल के साथ। फिर पिट्ठू जमाते समय बार-बार सात तक की गिनती का अभ्यास, यह देखने के लिए कि पिट्ठू बन गया कि नहीं। और फिर पिट्ठू के पत्थरों का आकार, छोटा ऊपर लगे और बड़ा नीचे तो पिट्ठू के अपने आप गिरने की संभावना कम है। और इस तरह खड़े करने में समय भी कम लगता है। यानी बच्चा बड़ा छोटा टुकड़ा छांटने का अभ्यास करता है।

पर क्या हम बच्चों के इन खेलों को देखते हैं? समझते हैं? और यह पहचानते हैं कि इनसे बच्चे क्या सीखते हैं? यदि हम यह जान लें तो ऐसी बहुत सी परिस्थितियां बनाई जा सकती हैं जिनमें बच्चों के खेल के अनुभव का उपयोग सीखने में हो रहा हो और इस तरह की और गतिविधियां वह कर रहे हैं जो खेल भी हैं और सीखने के लिए जरूरी भी।

लेकिन यह तभी हो सकता है जब यह बात मन से हटा दी जाए कि पढ़ना या सीखना हमेशा एक जबरदस्ती का बोझा है, बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के खिलाफ है और यह उनको बोर करेगा ही। इसमें से कोई भी कथन सही नहीं है। सीखना हर बच्चे के लिए एक स्वाभाविक कदम है और उसे इसमें बहुत मजा आता है। लेकिन अगर हमारे सवाल, हमारा सिखाने का तरीका ही ऐसा हो कि बच्चा उसमें घुटन महसूस करे तो फिर स्वाभाविक है कि वह सीखने को एक अत्यंत मुश्किल और जबरदस्ती का काम मानेगा।

दो खेलों को हमने ज्यादा बारीकी से देख यह जानने की कोशिश की कि उनमें बच्चा किस-किस चीज का अभ्यास करता है और उसे क्या-क्या सीखने को मिलता है। शायद इसमें भी कई बातें छूट गई होंगी। क्या आप कुछ और बातें जोड़ सकते हैं? इसके अलावा क्या आप बच्चों को कुछ और खेल खेलते देख यह लिखने की कोशिश कर सकते हैं कि उनसे बच्चे क्या-क्या सीखते हैं? शायद आप ये पाएं कि सीखना भी खेलने जैसा ही बनाया जा सकता है - यानि रोचक और मजेदार।

प्राशिका समूह

सवालीराम

उल्लू को दिन में क्यों नहीं दिखाई देता?

घनश्याम सिंह राजपूत, इटारसी
चम्पालाल कुमावाहा, हिरणखेड़ा

यह कहना सही नहीं है कि उल्लू को दिन में नहीं दिखता। वह सामान्य तौर पर दिन में भी देख सकता है और रात में भी। उल्लू के देखने की क्षमता के बारे में यह जरूर कहा जा सकता है कि जब प्रकाश बहुत कम होता है तो वह हमसे बेहतर देख पाता है किंतु प्रकाश अधिक होने पर हम बेहतर देख पाते हैं।

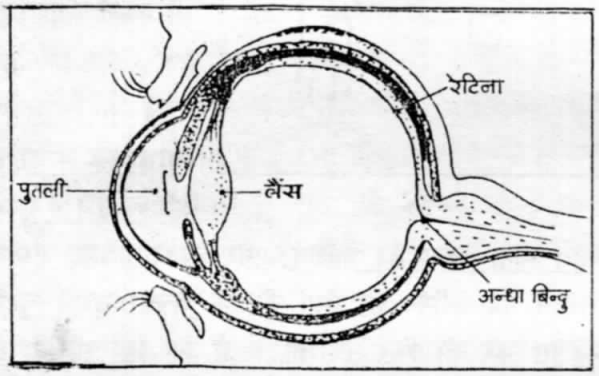

इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि रेटिना में उपस्थित रॉड और कोन के बारे में जाना जाए। यह माना जाता है कि जिन जीवों की दृष्टि विकसित होती है उन की आंखों में रॉड और कोन होते हैं। रेटिना में पाए जाने वाले ये रॉड और कोन प्रकाश के प्रति संवदेनशील हैं। ये तंत्रिका कोशिकाओं से जुड़े रहते हैं और इन पर असर की जानकारी ही हमारे मस्तिष्क में चित्र बनाती है।

रॉड और कोन की मात्रा एवं वितरण अलग-अलग प्राणियों में अलग-अलग होती है। कुछ जीवों में कोन ज्यादा हैं, कुछ में रॉड। जैसे बाज़ की आंखों में कोन की मात्रा हमारे से बहुत अधिक होती है। दिन में उड़ने वाले, विचरने वाले पक्षियों की आंखों में आमतौर पर कोन की मात्रा बहुत अधिक होती है।

इसके विपरीत उल्लू व अन्य रात के जीवों में कोन की मात्रा बहुत ही कम होती है पर रॉड की मात्रा काफी अधिक होती है। रॉड और कोन की मात्रा में अंतर से ही देखने की क्षमता में अंतर आता है।

रॉड कम प्रकाश में कार्य कर सकते हैं, उनमें प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता अधिक होती है। किन्तु उनमें छवि सुस्पष्ट रूप से दिखाने की क्षमता कम होती है। इसके अलावा वे रंग के प्रति संवेदनशील नहीं होते। इसी कारण जब हम अंधेरे में देखने की कोशिश करते हैं तो हम वस्तुओं के रंग को नहीं पहचान सकते। हमें सिर्फ वस्तुओं की आकृति दिखाई पड़ती है।

उल्लू की आंखों में रॉड की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसलिए उसे चीजें रंगीन नहीं दिखतीं और न ही उतनी स्पष्ट दिखती हैं जितनी हमें। किंतु अंधेरे में (बहुत ही कम प्रकाश में) जहां केवल रॉड ही काम कर सकती हैं वहां उल्लू आकृतियों को हमसे बहुत बेहतर देख सकता है।

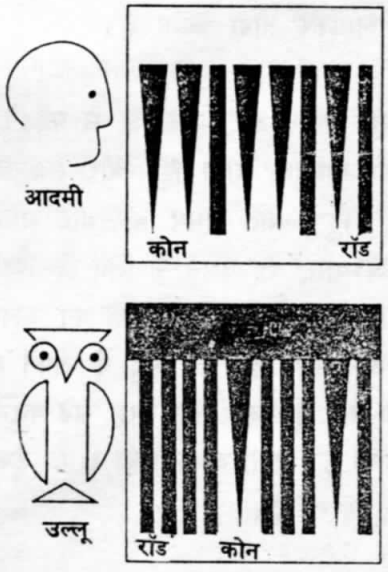

हमारी आंखों में जो कोन होते हैं वे चाहे कम प्रकाश में काम न करें किंतु प्रकाश में वे रॉड से काफी बेहतर हैं। एक तो वे ज्यादा बारीकी से प्रकाश की मात्रा में अंतर कर पाते हैं, जिससे चित्र/छवि की सुस्पष्टता बढ़ जाती है। दूसरी ओर वे रंगों के प्रति संवेदनशील होते हैं। दिन के पक्षियों में कोन की मात्रा अधिक होना उनकी बेहतर दृष्टि क्षमता

का एक प्रमुख कारण है।

उल्लू के देखने के बारे में कुछ बातें और :

रेटिना पर ज्यादा मात्रा में रॉड होने से ये स्पष्ट है कि उसे रात में उतना अच्छा नहीं दिख सकता जितना हमें दिन में दिखता है। उसे हम जो मद्धिम प्रकाश में देखते हैं उससे कुछ बेहतर दिखता है। फिर, वह रात में शिकार कैसे करता है और झपटकर भागते जीवों को कैसे पकड़ लेता है?

यह वह अपनी देखने की क्षमता के कारण नहीं करता। उसके सिर के चारों ओर जो चौड़ी डिस्क होती है। उसकी मदद से वह ध्वनि किरणों को केन्द्रित करता है और हल्की से हल्की आवाज को पहचान लेता है और उसकी स्थिति बारीकी से निश्चित कर लेता है। यह माना जा सकता है कि मूलरूप में रात को उसकी शिकार करने की क्षमता, इस सुन पाने की क्षमता के कारण ही है।

एक और बात, रॉड बहुत ही ज्यादा प्रकाश होने पर चौंधिया जाती हैं। ऐसी स्थिति में ज्यादा प्रकाश व कम प्रकाश में अंतर नहीं कर पातीं। यानी छवि में कहीं भी कम प्रकाश और ज्यादा प्रकाश का अंतर नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में वह देख ही नहीं पाएगा। किंतु सामान्य तौर पर दिन में इस से कम ही प्रकाश रहता है। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि उल्लू को दिन में नहीं दिखता। यह जरूर कहा जा सकता है कि उसे हमसे कम दिखता है और दूसरा यह कि उल्लू का रात को देखना भी बेहतर सुनना ही है।

संस्मरण :

दिसंबर अंक देखकर मुझे लगा कि सब कुछ नियमित चल रहा है। इधर मौसम में हुए बदलाव के साथ ही हरा मुखपृष्ठ मन को बांध रहा है। यह रंग कितना गुम होता जा रहा है न!

"भाषा सीखना कुछ पहलू" अच्छा लगा। इसे नियमित बनाएं। भाषा के संदर्भ में एक रोचक संस्मरण बताने की इच्छा हो रही है।

मैं एक बार दिल्ली में कवि भवानीप्रसाद मिश्र के यहां रुका था। मैं भवानी भाई के साथ बैठकर भोजन कर रहा था। तभी बाहर जाने के लिए तैयार होकर अनुपम मिश्र (भवानी भाई के पुत्र और पर्यावरणविद) आए और भवानी भाई से कहा - "मन्ना मैं जा रहा हूं। आपकी बात जैनेन्द्र जी से बोलता जाऊंगा।" भवानी भाई ने आंख उठाकर अनुपम को जरा घूरते हुए कहा - "अभी क्या कर रहे हो?"अनुपम झट अपनी भूल समझ गए और उत्तर दिया - "बोलते हुए नहीं कहते हुए जाऊंगा।"

"भवानी भाई का आशय था "बोलते तो हम हमेशा हैं पर कहना एक अलग क्रिया है।"

•कश्मीर उप्पल, इटारसी

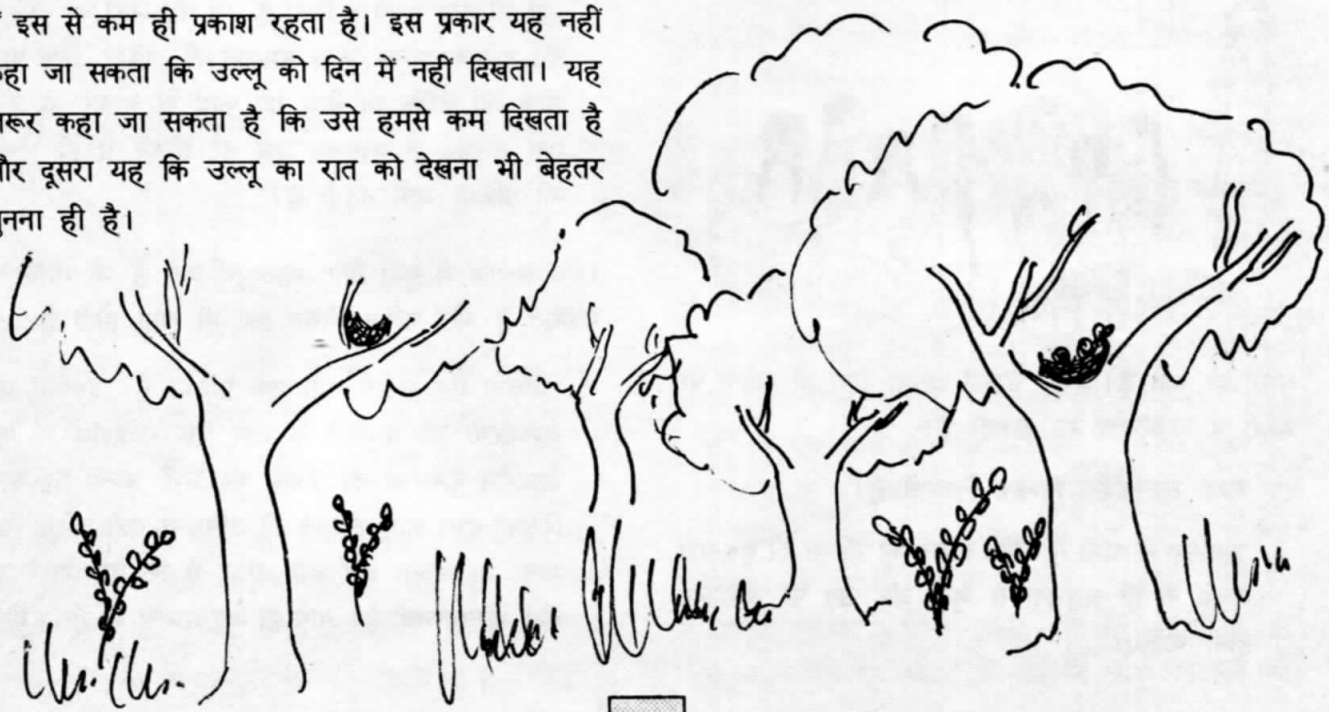

गणित सीखना-सिखाना

गणित सीखने की शुरूआत स्कूल पहुंचने के पहले से ही हो जाती है। जैसे अधिकांश बच्चों को बचपन से ही विशेष संदर्भ में थोड़ा बहुत गिनना आता है। विशेष संदर्भों में वे कुछ-कुछ जोड़ और घटा भी करते हैं इसी प्रकार घर में चीज़ों को जमाने में, उड़ेलने में, भरने में बच्चा जगह का अहसास करता है। यानी गिनती से संबंधित या संख्या से संबंधित क्रियाएं और जगह (स्पेस) से संबंधित कई अनुभव बच्चों को होते हैं। ऐसी बहुत सी क्रियाएं उसने की होती हैं या देखी होती हैं। आप खुद इस तरह के अनुभवों के कई उदाहरण ढूंढ सकते हैं।

यही अनुभव बच्चे के सीखने की बुनियाद बन सकते हैं। इन अनुभवों के प्रति शिक्षक के सचेत रहने से सीखने की प्रक्रिया सरल हो सकती है। बच्चों के सोच का ढांचा सामने आता है और उनमें नये अनुभव व नयी बातें बच्चा जोड़ सकता है या नई जानकारी के आधार पर अपने सोच का ढांचा बदल सकता है। ऐसा न होने से कक्षा में किया गया गणित और घर या बाजार पर किया गया हिसाब बच्चे के सोच में बिल्कुल

अलग हो जाते हैं। इससे उसकी क्षमता दोनों ही स्थानों पर अधूरी व अपरिपक्व रह सकती है।

इस सबसे स्वाभाविक निष्कर्ष निकलते हैं।

1. प्राथमिक शालाओं में गणित सीखने की प्रक्रिया की शुरूआत बच्चों के ही अनुभवों से जुड़ी और उन पर आधारित होनी चाहिए।
2. इसके लिए पहली आवश्यकता तो यह होगी कि बच्चों के इन अनुभवों को और ज्यादा समृद्ध और पैना बनाने की कोशिश हो।
3. इसे करने के लिए शिक्षक कक्षा में और पालक घर में कई ऐसी गतिविधियां कर सकते हैं जिनमें बच्चों को नापना पड़े, जोड़ना, घटाना और गुणा करना पड़े।
4. जगह घेरने के अभ्यास हों और उन सबके साथ-साथ उसे सोचना पड़े।
5. ऐसे बहुत से मौके स्वाभाविक तौर पर आते ही रहते हैं। आवश्यकता यह है कि इन्हें पहचाना जाए कि हर उपयुक्त संदर्भ में बच्चे को यह करने का मौका हो। दूसरी जरूरत यह होगी कि इस क्रिया के दौरान और अन्य परिस्थितियों में भी ऐसा न हो कि बच्चा सिर्फ एक मशीन की तरह गतिविधि पूरी करने की सोचे या फिर सिर्फ उत्तर तक पहुंचने की कोशिश करे। इसके स्थान पर ज़ोर इस बात पर हो कि बच्चा प्रक्रिया को समझने का प्रयास करे। समझने से भी ज़्यादा प्रक्रिया को आत्मसात कर उसे धीरे-धीरे विभिन्न परिस्थितियों में उपयोग करने की क्षमता हासिल कर सके।
6. जो भी कुछ बच्चे ने किया है उसे वह औरों को समझाए इस बात का मौका देने व समझाने की कोशिश उसके द्वारा सोचे गए तरीके या किये गए कार्य के आधार पर हो। एक अनुभव से गुजरकर उस पर सोचने से ही सीखने की प्रक्रिया आगे बढ़ती है।

इसके अलावा ये कुछ और महत्वपूर्ण बाते हैं जो सीखने से संबंधित हैं और गणित सीखने पर भी लागू होती हैं:-

1. सीखना एक घटना नहीं एक प्रक्रिया है। इसलिए एक अवधारणा को समझाने के लिए एक गतिविधि या एक बेहतरीन टैकनीक का ईजाद कर सभी बच्चों पर सभी शिक्षकों द्वारा लागू करवाने को उचित व सही तरीका नहीं माना जा सकता और हमें लगता है कि ऐसा करने का कोई मतलब नहीं है। साथ ही यह मानना भी गलत होगा

कि केवल पाठ व जुड़े उदाहरण करवा देने से बच्चा संबंधित अवधारणा सीख गया होगा।

2. बच्चे या तो सवाल रट लेते हैं या सवाल हल करने का तरीका रट लेते हैं। इसलिए आवश्यक है कि बच्चों को नए-नए सवाल दिए जाएं और उन्हें अपना तरीका विकसित करने का मौका हो। यह भी माना जाना चाहिए कि गणित की अवधारणाएं (वैसे बहुत सी अन्य अवधारणाएं भी) एकमुश्त नहीं सीखी जा सकतीं। एक ही बात ठोक-ठोक कर पढ़ाने और फि उस अवधारणा को भूल जाने से बहुत से बच्चे नहीं सीख पाते। इसलिए गणित सीखने में ज़रूरी है कि प्रत्येक अवधारणा को भिन्न-भिन्न अंतराल में कई बार दोहराया जाए। और अभ्यास के लिए ऐसी गतिविधियां हों जो उसे सक्रिय बनाएं और जो उसकी रूचि की हों।

3. इस तरह की गतिविधियों से सीखने में बच्चे के लिए एक चुनौती और खेल का अहसास है जो उसे सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यहां पर ऐसी गतिविधि की बात है जिनमें बच्चों की अभिव्यक्ति, भाषा की समझ, अपने आसपास की दुनिया की पकड़, सभी की भूमिका है और इनका अभ्यास है। ऐसा बहुत से खेलों में भी स्वाभाविक तौर पर होता है। किंतु इसमें एक पहलू जोड़ा जाना

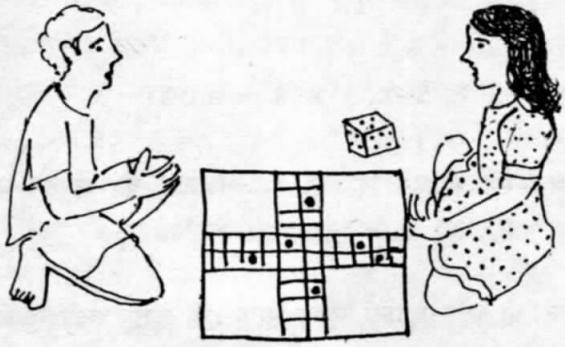

आवश्यक है। बच्चा अपनी बात, सोचने के ढंग व तार्किक ढांचे को समझाए जिसके लिए उसे सहानुभूति व धैर्यपूर्ण श्रोता मिले और आगे दिशा दिखाने के लिए गुरू भी।

अभी तक जो हमने कहा उस सबमें हमने गणित सीखने का संबंध बच्चे के जीवन और अनुभव से जोड़ा है और साथ ही उसे शाला की अनेकों अन्य गतिविधियों से भी। गणित सिखाना बोर्ड पर सवालों की नकल करवाना तो है ही नहीं, उसे बोर्ड पर या पट्टी पर बच्चों से सवाल करवाने तक भी नहीं सीमित किया जा सकता। इस बात के साथ यह भी होना चाहिए कि जब बच्चा किसी एक प्रक्रिया को नहीं समझ पा रहा हो या समझ पा रहा हो तब भी उसके पास मौका हो कि वह बात को नये शब्दों में या उन्हीं शब्दों में सिर्फ दोहराकर बच्चों को समझाए। इसके विपरीत सामान्य तौर पर हमारी प्रवृत्ति होती है कि जब बच्चे या कोई बच्चा हमारी बात नहीं समझता तो हम दुबारा समझाने की कोशिश में उसी बात को उन्हीं शब्दों में दोहराते जाते हैं। इसमें यह बात कि आखिर वह समझ क्यों नहीं पाया बिल्कुल छूट जाती है। हमें लगता है कि इस प्रक्रिया से शायद बच्चे में सीखने के प्रति मानसिक अवरोध और भी बढ़ जाये। वैसे यह बात हम सब मानते हैं, कहते भी हैं किन्तु शायद कर नही पाते। हमें लगता है कि उसी बात को दोहराने के स्थान पर ज़रूरत है बच्चे को ऐसे नये अनुभवों से गुजरने का मौका मिले, ऐसी नई क्रियाएं करने का मौका हो जिससे उसे प्रक्रियाओं के बारे में सोचना पड़े उसके नए आयाम सामने आएं और वह बात को समझ पाए।

गणित सीखने के संदर्भ में हमारा मानना है कि बच्चा सोचने पर ही समझ पाता है और सोचने के लिए अनुभव का आधार आवश्यक है, इसलिए हमारी राय में प्राथमिक शाला का मुख्य उद्देश्य है बालक के अनुभव को और सुदृढ़ बनाना, उसे गणित संबंधी, बहुत सी गतिविधियों से जूझने का मौका देना, सोचने और समझने के लिए प्रोत्साहित करना।

यह समझ वर्तमान के पाठ्यक्रम की समझ से अलग है, और कक्षा में हो रही गणित शिक्षण की प्रक्रिया से तो बहुत ही अलग।

1. सामान्य पाठ्यक्रम विभिन्न कौशलों के सिर्फ कुछ ही पहलुओं पर ध्यान देता है। इसके अलावा कुछ विशेष कौशल भी सामान्य पाठ्यक्रम में छूट जाते हैं। उदाहरण के लिए सामान्य पाठयक्रम सिर्फ गिनती सुनाने, जोड़ करने, घटाने, गुणा करने, भाग देने/करने तक ही सीमित हो जाता है। गिनती व संख्या का अहसास जैसी बातें और जगह की समझ जैसे मसले छूट ही जाते हैं।
2. इसमें अधिक से अधिक इतनी ही अपेक्षा रहती है कि बच्चा सवाल के स्वरूप को देखकर आवश्यक सूत्र का

उपयोग करे और उसे हल करे।

3. सीखने में भी ज़्यादा जोर केवल उत्तर तक पहुंचने पर ही रहता है।
4. उत्तर तक पहुंचने के लिए जोर समझने की प्रक्रिया पर नहीं बल्कि पहाड़े रटने और विभिन्न सूत्र और विधियां याद रखने पर रहता है।
5. पढ़ाने का तरीका यह होता है कि हर सूत्र/विधि का बार-बार अभ्यास कराया जाए और परीक्षा में भी इसी बात का आकलन किया जाता है कि बच्चे को सूत्र या विधि याद हैं या नहीं।

सूत्रों को याद रखने या सवालों को हल करवाने के इस तरह के प्रयासों के पीछे शायद यह समझ है कि एक सूत्र का बारबार प्रयोग करने से वह धीरे-धीरे समझ में आने लगता है। इस तरह अभ्यास के लिए सवालों का चुनाव भी इसी ढंग का होता है, व एक ही सूत्र को अलग-अलग परिस्थितियों में बार-बार दोहराया जाता है। इसी वजह से कुछ अपेक्षाकृत अच्छी पुस्तकों में हर सूत्र विधि के एक प्रकार के अभ्यास के पहले कुछ हल किए हुए उदाहरण रहते हैं। ये उदाहरण ऐसे होते हैं जिनमें सूत्र का अलग-अलग परिस्थितियों में उपयोग होता है। फिर इन्हीं के आधार पर बच्चों को आगे के अभ्यास करने होते हैं।

सूत्रों के इस उपयोग से हम क्या-क्या नहीं सीख पाते इसके लिए एक सवाल है जो आपके स्तर के लिए बनाया गया है। वर्गमूल का कलन हम अभी भी इस्तेमाल करते हैं और ब्याज निकालने का भी। क्या आप इन कलनों के स्वरूप का आधार बता सकते हैं? यानि ये कलन ऐसा क्यों बना, क्या आप बता सकते हैं?

जैसे 25, 74, 72 का वर्गमूल ऐसे निकालते हैं :

```
       |  507.2
      5|  25,74,72
       |  25
   1007|  7472
       |  7449
 101402|    230000
       |    202804
       |     17196 आदि
```

इसी तरह साधारण ब्याज का सूत्र

$$\text{साधारण ब्याज} = \frac{\text{मूलधन} \times \text{दर} \times \text{ब्याज}}{100}$$

$$\text{दर} = \frac{\text{मूलधन} \times \text{साधारण ब्याज}}{100}$$

इसी तरह से समय व चक्रवृद्धि ब्याज के कलन, लघुतम के कलन आदि सभी कलन ऐसे क्यों हैं? सोचकर बताने की कोशिश करें।

यदि आप ये नहीं बता सकते तो आप पूरी तरह से न तो वर्गमूल समझे और न ही ब्याज।

जैसे लघुतम के कलन में

5	25,	75,	15,	40
5	5,	15,	3,	8
3	1,	3,	3,	8
	1,	1,	1,	8

लघुतम 5 x 5 x 3 x 8 = 600

अब यह बताइये कि यह इन संख्याओं का लघुतम कैसे हुआ? या, यह सवाल पूछना ही अनुचित है?

बच्चे भी जोड़-घटाना, गुणा-भाग इसी तरह करते हैं और एक के नीचे दूसरी संख्या लिख क्रम से जोड़ तो लेते हैं किंतु जोड़ का अर्थ क्या है, कब जोड़ना है कब नहीं, यह तय नहीं कर पाते और भिन्न में भी ऊपर नीचे की संख्या को क्रम से जोड़ डालते हैं।

हमें यह लगता है कि शायद इस सूत्र के अभ्यास व सूत्र याद करने की प्रक्रिया से अधिकांश बच्चे तो कुछ भी नहीं सीख पाते। किंतु थोड़े बहुत कुछ सीख भी जाते हैं। इस संदर्भ में यह बता पाना मुश्किल है इन बच्चों के सीखने की

ऐसा न हो कि बच्चा सिर्फ एक मशीन की तरह गतिविधि पूरी करने की सोचे या फिर सिर्फ उत्तर तक पहुंचने की कोशिश करे। इसके स्थान पर ज़ोर इस बात पर हो कि बच्चा प्रक्रिया को समझने का प्रयास करे।

प्रक्रिया क्या होती है। यानि पक्के तौर पर नहीं कह सकते कि ये बच्चे सवाल क्यों हल कर पाते हैं। इसके बारे में सिर्फ कुछ संभव कारण सोचे जा सकते हैं। जैसे शायद यह कहा जा सकता है कि उन विविध उदाहरणों को देखने व हल करने की कोशिश के बाद ये बच्चे सभी प्रकार के सवालों को अलग-अलग समझने लगते हैं। वे इनमें से छांटकर सवालों के अनुसार, कलन/विधि को फिट करना समझ लेते हैं। किंतु इनमें से बहुत से बच्चे वास्तव में यह नहीं समझते कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों। जैसे x या ÷ का निशान देखकर गुणा और भाग तो दे सकते हैं लेकिन यह नहीं समझ सकते कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। इस अधूरी क्षमता के कई और भी उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं। विविध व नए प्रकार के सवालों से जूझ पाने की क्षमता बच्चों में काफी कम होती है। सोचकर हल करने वाले सवालों में बच्चे असहाय हो जाते हैं।

पांचवीं के बच्चे 10-6 = 4 तो कर लेंगे लेकिन 10-?=8 नहीं कर सकते। दूसरे सवाल में उन्हें सिर्फ कलन ही फिट नहीं करना है बल्कि जोड़-घटाने के अर्थ की समझ का उपयोग करना है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है यह दिक्कत बढ़ती जाती है चूंकि शुरू में तो बच्चों को एक-दो कलन से ही जूझना होता है और तब वे यांत्रिक ढंग से इनसे संबंधित सवाल कर लेते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे-जैसे उसे ज़्यादा कलन याद रखने की कोशिश करनी पड़ती है वैसे-वैसे उन्हें व्यवस्थित रूप से दिमाग में रखना संभव नहीं रहता। बच्चे इन कलनों का उपयोग करते समय विभिन्न कलनों में उलझते जाते हैं और जोड़ की जगह गुणा या फिर किसी अन्य परिस्थिति से संबंधित सूत्र या बिल्कुल और ही कुछ करने लग जाते हैं। सारी क्रियाएं व सारे कलन गड्ड-मड्ड हो जाते हैं।

यहां कलन शब्द का प्रयोग तरीके, सूत्र, प्रक्रिया, विशेष ढंग, शार्ट-कट, नियम आदि के मिले-जुले अलग-अलग प्रकार के मिश्रणों के लिए उपयोग किया गया है। जैसे जोड़ करते समय संख्याओं को एक के नीचे दूसरी लिखते हैं या भिन्नों का गुणा के सवाल हल करते समय हर को हर से और अंश को अंश से गुणा कर देते हैं। भिन्न से भाग देते समय भिन्न को उलटा कर गुणा कर देने से काम चल जाता है, आदि-आदि। यह सब कलन के उदाहरण हैं।

कलनों का जंजाल -

इस तरह से एक सामान्य दिक्कत जो बहुत से बच्चों को प्रभावित करती है, उसे कलनों का अटकलपच्चू ढंग या तुक्के से इस्तेमाल कहा जा सकता है। बच्चों की उत्तर पुस्तिकाएं देखने पर यह स्पष्ट दिखता है कि मानो वे कलनों के जंजाल में उलझ गए हों। भिन्न का जोड़ करते-करते वे स्तंभों को जोड़ देते हैं या फिर वे लघुतम लेने की प्रक्रिया में बनने वाले अंकों के पैटर्न की व्यवस्था जैसा चित्र बनाने की कोशिश करते हैं। किंतु उनके चित्र में कोई भी अंक कहीं भी लिखा हो सकता है। उनकी कोशिश सिर्फ उस जैसी दिखने वाली अंक व्यवस्था बनाने की होती है।

दूसरी बात इस प्रक्रिया के सीखने-सिखाने के दृष्टिकोण की है। इस तरीके में यदि बच्चा सीख नहीं पाता तो मेहनती शिक्षक उसे उसी तरह के कुछ और उदाहरण करवाने की कोशिश करते हैं। अभी भी सूत्र की समझ पर जोर कम ही होता है, ध्यान सवालों को हल करवाने पर ही दिया जाता है। (शायद यह भी नहीं है कि सभी शालाओं में सभी शिक्षकों द्वारा इतना सब भी करवाया जाता हो। सामान्य तौर पर तो किताबों के उदाहरण हल कर आगे बढ़ जाते हैं।)

गणित सिखाने का एक और तरीका खोजा और प्रयोग किया गया था। उसमें यह माना जाता है कि जब तक बच्चों को गणित विषय के मूल तत्वों की जानकारी नहीं होगी और उनकी परिभाषाएं याद नहीं होगी तब तक उसे आगे की चीजें समझ में नहीं आएंगी। इसमें शुरू की चीजें या मूल तत्व वाली अवधारणाओं की अमूर्तता का ध्यान नहीं रखा जाता और न ही इसमें बच्चों की रूचि, उनके समझने के ढंग व मिलान क्षमता का। मूल बातें विषय के अवधारणात्मक ढांचे के आधार

सीखना एक घटना नहीं एक प्रक्रिया है। हमारा मानना है कि बच्चा सोचने पर ही समझ पाता है और सोचने के लिए अनुभव का आधार आवश्यक है।

पर तय की जाती हैं। उदाहरण के लिए माना जाता है कि ज्यामिति सीखने के लिए जब तक बच्चा यह नहीं जानता कि बिंदु क्या है और फिर सरल रेखा क्या, तब तक यह नहीं समझ पाएगा कि आयत, त्रिभुज, कोण क्या है। और जब तक आयत, त्रिभुज, और कोण नहीं जानेगा तब तक आकृतियों में विविधता व आस-पास की जगह को नहीं समझ पाएगा। इसलिए यह कह सकते हैं कि इस तरीके में ज़ोर बुनियादी नियम और सिद्धांत सिखाने और अमूर्तिकरण पर है। यही समझ इस तरीके का पक्ष लेने वालों से बात करने पर उभरती है।

लेकिन ये बुनियादी नियम और सिद्धांत काफी जटिल और अमूर्त होते हैं। वैसे शायद इस तरीके में यह बात भी निहित हो कि यह उतना जरूरी नहीं है कि बच्चे ये सब शुरू में ही समझ पाए। वे इसे याद कर लें और यथासंभव थोड़ा बहुत समझ लें। जैसे-जैसे वे और गणित सीखेंगे, अलग-अलग संदर्भों में उसका उपयोग करेंगे, वैसे-वैसे ये बातें उन्हें ज्यादा समझ में आती रहेंगी। किंतु शुरूआत में ही इन बातों से परिचय और इनको समझने का प्रयास आवश्यक है, गणित के ढांचे की इन अवधारणात्मक बुनियाद से शुरू करके और जूझ कर ही बच्चे गणित सीख सकते हैं।

गणित सीखना क्या है?

इस मायने में इन दोनों धाराओं में पढ़ने के तरीके को लेकर एक सामान्य सिद्धांत है - अभ्यास करते-करते अपने आप ही धीरे-धीरे समझ में आने लगेगा कि आखिर बात क्या है। इन दोनों में हमें जो कमजोरी लगती है वह यह है कि इनमें बच्चों के समझने के तरीके और सीखने के स्वाभाविक या/और विशिष्ट प्रक्रियाओं का कोई स्थान नहीं है। बच्चों की परिकल्पनाओं, उनकी सोच के समावेश के लिए कोई जगह नहीं है। किसी भी चीज को सीखने में हम अपनी ही स्थिति से, अपने ही सोच के स्तर से शुरू करके आगे बढ़ सकते हैं। हमारे अनुसार किसी दूसरे द्वारा बनाए सुव्यवस्थित या तार्किक सोच को रटकर या बिना समझे अपनाकर बात को समझा नहीं जा सकता। किसी भी चीज को सीखने के लिए सीखने वाले की कम से कम मानसिक सक्रियता जरूरी है। हमें लगता है कि इसके लिए कक्षा में बच्चे की अभिव्यक्ति व उसकी क्रियाशीलता का महत्व है। उसे अपने ढांचे को अभिव्यक्त कर उसमें परिवर्तन करते-करते ऐसा ढांचा बनाना है जो ज्यादा व्यापक हो और ज्यादा परिस्थितियों में इस्तेमाल किया जा सके।

इसका अर्थ यह है कि जब बच्चे अभ्यास करें तो वे अपने सोच के ढांचे को बदल भी पाएं और प्रत्येक अवधारणा के संदर्भ में अपनी समझ बना पाएं। सवाल का उत्तर खोजना या उत्तर निकालना ही महत्वपूर्ण नहीं है। बहुत से और नई-नई तरह के सवालों को हल करना तो जरूरी है, किंतु यांत्रिक ढंग से कलन का इस्तेमाल करके नहीं। अभ्यास इस तरह का हो जो बच्चों को नए अनुभव दे, उनके सामने नई बातें रखे। सवाल हल करते समय वे हल के लिए उपयोग किए गए तरीकों के बारे में भी सोचें। उन्हें मौका हो कि वे अपने तरीके को अभिव्यक्त करने की जरूरत समझें और उसका प्रयास करें। यहां एक और बात कहना उचित होगा- सवाल हल करने के साथ-साथ सीखने वाले के लिए जरूरी है कि वह सवाल बनाए भी।

गतिविधियां कैसी हों?

एक बात स्पष्ट है - हम उन्हीं परिस्थितियों में क्रियाशील हो पाएंगे या सोच पाएंगे जो हमारे लिए रोचक हों या महत्वपूर्ण हों। इसलिए जरूरी है कि कक्षा में ऐसी गतिविधियां हों जिनमें रोचकता का अहसास हो, जिनमें कुछ करना पड़े और करने के बाद सोचना, समझना पड़े और समझाना पड़े। ऐसा माहौल हो जिसमें इस प्रकार की क्रियाओं को विविध प्रकार से दुबारा किया जा सके और तब तक किया जा सके जब तक हमारे निष्कर्ष हमें समझ में न आने लग जाएं। यहां यह कहना आवश्यक है कि ये मौके बार-बार मिलें और समय के एक अंतराल के बाद मिलें। बिना सवाल हल कर पाने के दबाव के और बिना डर के स्वाभाविक तौर पर गणित की क्रियाएं करने के मौके हों।

किसी भी चीज को सीखने में हम अपनी ही स्थिति से, अपने ही सोच के स्तर से शुरू करके आगे बढ़ सकते हैं। हमारे अनुसार किसी दूसरे द्वारा बनाए सुव्यवस्थित या तार्किक सोच को रटकर या बिना समझे अपनाकर बात को समझा नहीं जा सकता।

हमें लगता है कि गणित सीखने के लिए आवश्यक है कि गणित को रोचक बनाया जाए। कक्षा को जिंदा, हलचलपूर्ण और मजेदार बनाया जाए। वैसे भी गणित हो या कोई और विषय बच्चे को विषय की घुट्टी पिलाकर नहीं सिखाया जा सकता। हमारी शालाओं में आजकल गणित शुरू से ही बच्चों के लिए अर्थहीन प्रतीकों से अर्थहीन प्रक्रियाएं करके कुछ-कुछ उत्तर निकालने तक सीमित हो जाता है और उत्तर भी वे ही जो सही हों, तीर लगे या तुक्का।

गणित सिखाने की एक संभव दिशा :

गणित को मजेदार, सोचने के मौकों के साथ-साथ रोचक संदर्भ में सिखाना चाहिए। अगर हम यह बात मान लेते हैं तो कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। और ये दो सवाल महत्वपूर्ण बन कर हमारे सामने उभरते हैं -

1 - कौन से अनुभव, कौन सी गतिविधियां बच्चों के गणित सीखने के लिए जरूरी हैं,

2 - बच्चों के स्वाभाविक सामान्य अनुभवों की प्रक्रिया को दिशा और गति देने में किस तरह से उपयोग किया जाए?

शुरूआती संदर्भ :

ठोस वस्तुओं के आधार पर -

इस संदर्भ में अगर हम सोचें तो पहले-पहले जो बात साफ रूप से सामने आती है और जो सभी के द्वारा मानी जाती है वह है - कि बच्चे ठोस वस्तुओं के साथ क्रिया करके सीखने की शुरूआत करते हैं। उठाते हैं, उठाते-पटकते हैं, सूंघते हैं, ठोकते-बजाते हैं। और ठोस वस्तुओं के साथ ये सब अनुभव बच्चों की रूचि के हैं।

इसलिए कक्षा में गणित सीखने की शुरूआत ठोस वस्तुओं से हो सकती है। शुरू में कुछ इस तरह की बातें की जा सकती हैं कि बच्चे तरह-तरह की चीजों को इकट्ठा करें, उनसे खेलें, परीक्षण करें और उनसे कुछ व्यवस्थित क्रिया करें। ऐसी क्रियाएं जिनमें उन्हें सोचना पड़े , और वस्तु का ज्यादा बारीक अवलोकन करना पड़े। इन क्रियाओं को इस प्रकार बनाया जा सकता है कि इनमें मजा आए, इनमें खेल का, चुनौती का, भागीदारी का अहसास हो।

ऐसी गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं - वस्तुओं को अलग-अलग आधारों पर छांटना (भिन्नता, रंग, आकार, उपयोग, बनावट, पदार्थ आदि), छोटे-बड़े क्रम में जमाना, पहले-बाद के क्रम में समझना, एक से एक संगति करके जोड़ियां बनाना, इन चीज़ों को जमा कर कल्पनात्मक घर, गांव, बैलगाड़ी, स्कूल आदि-आदि के माडल बनाना आदि।

इसके बाद चित्रों का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु चित्रों का उपयोग करने में यह बात ध्यान देने की है कि बच्चे स्वतः और शुरू से ही चित्र नहीं समझ सकते। उन्हें चित्र समझने की क्षमता भी हासिल करनी होती है। ये क्षमता चित्रों को समझने की, पढ़ने व इस्तेमाल करने की कोशिश के बाद ही विकसित होती है। ठोस वस्तुओं से चित्र की ओर बढ़ना अपेक्षाकृत अमूर्त स्तर की ओर कदम है। क्योंकि जिस तरह से ठोस वस्तुओं को हाथ में लेकर टटोला, परखा, हटाया, घुमाया जा सकता है, वह चित्र में दर्शाई वस्तुओं के साथ संभव नहीं है।

इसको ध्यान में रखते हुए कक्षा में ठोस वस्तुओं के संदर्भ में चित्रों का उपयोग, उन पर चर्चा और मौखिक भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। बच्चे जो भी क्रिया कर रहे हों उस पर उनसे बातचीत करना, उसके बारे में उनका सोच धैर्य से सुनना जरूरी है।

सामान्य खेलों व चर्चा में गणितः-

इसके साथ ही कुछ ऐसी गतिविधियां हो सकती हैं जिनमें चर्चा के माध्यम से गणित के विभिन्न पहलुओं को उभारा जा सके। जैसे कक्षा के कमरे पर चर्चा करते हुए पूछना कि

ऐसे बहुत से मौके स्वाभाविक तौर पर आते ही रहते हैं। आवश्यकता यह है कि इन्हें पहचाना जाए कि हर उपयुक्त संदर्भ में बच्चे को यह करने का मौका हो।

सबसे बड़ी खिड़की किधर है, दरवाजे के कितने पल्ले हैं, ऊपर क्या टंगा हुआ है? आदि।

कहानी, कविता या चित्रों से उभरती हुई चर्चा मे भी इसी तरह के सवाल हो सकते हैं - चित्र में सबसे बड़ा जानवर कौन सा है? तीन गायें दिख रही हैं तो कितने सींग होंगे? आदि। और फिर बगैर इस प्रकार के संदर्भ के भी कुछ मौखिक समूहीकरण हो सकते हैं, जैसे लाल रंग के फूल गिनना, काली चिड़िया गिनना आदि। ऐसे ही खेल में गेंद के टप्पे गिनना आदि इसके कुछ उदाहरण हो सकते हैं।

जिस प्रकार भाषा सीखने के संदर्भ में यह बात मानी जाती है कि ठोस वस्तुओं और चित्रों से गतिविधियां करने के बाद बच्चे लिखित रूप में प्रतीक या चिन्हों की पहचान कर उनसे क्रियाएं करना सीखते हैं। उसी प्रकार गणित सीखने की प्रक्रिया धीरे-धीरे अमूर्त अवधारणाओं की ओर बढ़ती है। अगर हम गिनती को ही लें तो तीन नाम की संख्या का परिचय पहले वस्तुओं और चित्रों के माध्यम से होगा। लेकिन तीन की संख्या का अर्थ/अस्तित्व अपने आप में अलग से ही है। वह वस्तुओं के समूहों का एक गुण जरूर दर्शाती हो लेकिन वह उन विशेष समूहों से ही अपना अर्थ नहीं निकालती।

तीन पत्थर भी हो सकते हैं, तीन भगवान के अवतार, तीन पहाड़, तीन सेनायें, तीन आदमी हो सकते हैं यानी किन्हीं भी वस्तुओं को तीन के समूह में रखा जा सकता है। इस प्रकार तीन अपने आप में एक और अलग अमूर्त अवधारणा है। उसे समझने के लिए गिनती के आधारों को समझना जरूरी है, इन में से प्रमुख हैं - क्रम की धारणा, एक से एक संगति, गिनती क्रम के नाम, गिनती क्रम का हर बार एक-एक करके ही आगे बढ़ना आदि।

इसी प्रकार चाहे हम गुणा करने की शुरूआत ठोस वस्तुओं और चित्रों से क्यों न करें अंततः बच्चों को उसकी अवधारणा जरूर समझ में आनी चाहिए। संख्याओं के बीच किस तरह के संबंधों पर गुणा की प्रक्रिया आधारित है? जैसे, गुणा का मतलब है -एक ही संख्या को बार-बार जोड़ना। इसमें यह समझना ज़रूरी हो जाता है कि कौन सी संख्या कितने बार जोड़ी जा रही है। इस बात को समझने से गुणा के बारे में और बहुत सी बातें समझना संभव हो जाता है और उन्हें इससे संबंधित नियमों व संख्याओं के गुणों को रटना नहीं पड़ता।

एक उदाहरण देखें

$$3 \times 4 = 3+3+3+3 \text{ या } 4+4+4$$

यानी/चूंकि $3 \times 4 = 4 \times 3 = 12$

इस प्रकार जब हम विशेष संदर्भ से बढ़कर अवधारणा समझने की बात करते हैं हम गणित को अमूर्तता की ओर ले जाने की बात करते हैं। लेकिन अमूर्तता सिर्फ अपने आप में जरूरी नहीं है - उसकी आवश्यकता इसलिए होती है कि इस समझी हुई अमूर्त अवधारणा का उपयोग किसी भी संदर्भ में किया सके। अन्य स्थितियों में, आगे की कक्षाओं में इस ग्रहण किए गए सूत्र की समझ से मदद ली जा सके। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि बच्चों को गुणा जोड़ के संबंध के बारे में यह बात समझाए बिना आगे ही नहीं बढ़ा जा सकता। और न ही उसे उसे बार-बार जोड़ने का और गुणा का अभ्यास करवाते रहना उसके सीखने के लिए पर्याप्त है। उन्हें गुणा व जोड़ के विभिन्न आयामों के अन्य विविध अनुभवों की भी उस समय ज़रूरत होगी।

इसी तरह गिनती सिखाने में, यह मानकर कि बच्चे को पहले एक से एक संगति सीखनी चाहिए, उसी का अभ्यास करवाते रहना और यह सोचना कि उसमें 'मास्टर स्तर' का कौशल हासिल कर चुकने के बाद ही आगे बढ़ेंगे गलत होगा। हमारा मानना है कि समझने की प्रक्रिया में सीखने वाले के सोच का ढांचा बहुत से टुकड़ों के एकत्रित होने से बनता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सिखाने के प्रयास में ऐसे अभ्यास होने चाहिए जिनमें एक मोटी क्रमिकता भी हो और इसी के साथ-साथ ही अभ्यासों का, गतिविधियों का एक ऐसा व्यापक सम्मिश्रण हो जो इस क्रमबद्धता को तोड़ता हो और अवधारणाओं के

अनुभव ही बच्चे के सीखने की बुनियाद हैं। अनुभवों के प्रति शिक्षक के सचेत रहने से सीखने की प्रक्रिया सरल हो सकती है, बच्चों के सोच का ढांचा सामने आ सकता है और उनमें नये अनुभव व नयी बातें बच्चा जोड़ सकता है या नई जानकारी के आधार पर अपने सोच का ढांचा बदल सकता है। ऐसा न होने से कक्षा में किया गया गणित लगभग निरर्थक सा ही हो जाता है।

अभ्यास में आगे-पीछे और ऊपर नीचे जाता हो। इसी से हर कक्षा में उपस्थित बच्चों के समझने के विविध ढांचों की सामाजिक आवश्यकता को पूरा करने की कोशिश की जा सकती है और बच्चों द्वारा ग्रहण अवधारणाओं की समृद्धता को बढ़ाया जा सकता है।

यानी, हमारा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि कक्षा में करने के लिए खेलों, या गतिविधियों का चुनाव अकारण या अटकलपच्चू ढंग से हो और उसमें किसी प्रकार के चुनाव की जरूरत नहीं है। इसके विपरीत हमारा मानना है कि यह चुनाव बहुत ही ध्यान से किया जाना चाहिए, सिर्फ कुछ जगह की परिस्थिति के आधार पर सब जगह के लिए वाजिब चुनाव नहीं किया जा सकता। हर शाला के लिए इसे समय-समय पर शिक्षक द्वारा किया जाना चाहिए। चुनाव करने में बच्चों की रूचि का ध्यान रखने के साथ साथ उस समय उन बच्चों के सीखने के लिए आवश्यक अनुभव देने की दृष्टि से भी गतिविधि ली जानी चाहिए।

संक्षेप में इसका अर्थ यह हुआ कि गणित सीखने में ठोस एवं स्पष्ट उदाहरणों की, जीवन के अनुभवों को समाविष्ट करने की आवश्यकता है। इन अनुभवों के आधार पर ढ़ांचा बनाना और उसे नए अनुभवों के आधार पर लगातार परिवर्तित करना और उसे व्यक्त करते रहने की कोशिश करते रहना अमूर्तता से जूझने के लिए अनिवार्य है।

ऐसी कौन सी गतिविधियां हो सकती हैं, सवाल व पहेलियां हो सकती हैं जो बच्चों को रोचक व चुनौतीपूर्ण तो लगें लेकिन अत्यधिक मुश्किल और अग्राह्य न हों, यह चुनाव आवश्यक है। सीखने और विशेषतौर पर गणित सीखने के बारे में यह कहा जा सकता है कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया ऐसी बने जो बच्चों को सीखने के प्रति प्रेरित करे, उसे अमूर्तता समझने और नियमों, सिद्धांतों को उनके परिप्रेक्ष्य में लचीले ढंग से समझाए। गणित सिखाते-सिखाते यदि बच्चे गणित से डरने लग जाएं और उसे एक अरूचिपूर्ण, अग्राह्य बात मानने लगें तो ऐसे गणित सीखने का कोई विशेष अर्थ नहीं बचता। हमारा मानना है कि अंकों, संख्याओं, आकृतियों आदि से खेलना, उनसे संबंधित नियमों का मानसिक खेल के रूप में इस्तेमाल करने में रूचि गणित सीखने का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाना चाहिए। गणित सिखाने को कक्षा व परीक्षा में सवाल हल कर पाने तक नहीं सीमित किया जा सकता।

प्राशिका समूह
एकलव्य

नोटः
यह लेख हमारे बन रहे सोच को आप के सामने रखने का प्रयास है। इस के बारे में आप की राय मिलने से हमें मदद मिलेगी। यदि आप छूटे मसलों की और हमारा ध्यान आकर्षित कर सकें या हमारे दृष्टिकोण की अस्पष्टताओं को सामने ला सकें तो भी इस कार्य को आगे बढ़ाने में मदद होगी।

प्राशिका समूह

संपादक की ओर से :

गणित एक ऐसा विषय है जिससे अधिकांश छात्र डरते हैं। ऐसा क्यों? क्या आप भी इस बात से चिंतित हैं?

वैसे तो गणित पढ़ाते समय सभी शिक्षक अपने-अपने तरीके बनाते-बदलते रहते हैं। लेकिन इन विविध तरीकों पर सोच-विचार नहीं हो पाता।

हम चाहते हैं कि गणित सिखाने पर सभी तरह के लोगों के अनुभव और मत सामने आएं और उन पर चर्चा हो। उम्मीद है कि आप भी इस बात को उतना ही महत्वपूर्ण समझेंगे जितना कि यह हमें लगता है। हमें आप के विचारों का इंतजार है।

खेल का गणित

"गणित सीखना सिखाना" लेख के ही संदर्भ में हम यहां कुछ शैक्षिक गतिविधियां दे रहे हैं। जिन्हें हमने एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के तहत कक्षा 3 व 4 के लिए तैयार कार्य पुस्तक "खुशी-खुशी" से लिया है।
इन उदाहरणों से यह बात भी स्पष्ट हो सकेगी कि खेल-खेल में बच्चों को गणित की जटिल मानी जाने वाली अवधारणाएं सिखाना भी संभव है।

कौन पहले पहुंचेगा?

								५०
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९
४०								
३९	३८	३७	३६	३५	३४	३३	३२	३१

हर दूसरे खाने में हल्का-हल्का पीला रंग कर दो।

								३०
२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
२०								

हर पांचवें खाने में हल्का हरा रंग कर दो।

१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११
								१०

कौन से खानों में दोनों रंग भरे गये?

१	२	३	४	५	६	७	८	९

अंको की उलट पुलट

१ से ५ तक के अंक लो। ऐसे दो अंकों से बनने वाली कोई भी संख्या लो। दोनों अंक एक ही न हों।

उदाहरण ३४ ४५ १५

क्या १७ २८ ३७ ४६ ऐसी संख्याएं हैं? क्यों?

मानो हमने संख्या ली ४३।
इसके दोनों अंकों को उल्टा कर लिखो — ३४
इनमें से बड़ी संख्या कौन सी है? ४३
४३ में से ३४ घटाओ। ४३-३४=

तुम भी कोई ऐसी संख्या चुन लो। उसके अंकों को उलट कर संख्या बनाओ। बड़ी संख्या से छोटी संख्या घटाओ? क्या आया?

९ या १८ या २७ या ३६ ।

मेरा दावा है कि इस के सिवा कुछ और जवाब नहीं आएगा। कापी पर करके देखो।

एक और मजेदार बात।

अब की बार १ से ९ तक के अंक लो। ऐसे दो अंकों से बनने वाली कोई भी संख्या लो। जैसे ३१/२२/९३/१५

मानो संख्या ली ३१ अंको को उल्टा कर १३
दोनों को जोड़ने पर ४४
मेरा दावा है कि जोड़ के दोनो अंक सदा बराबर होंगे। जांच कर देखो।

लेन-देन

एक कार्ड बराबर दस कंकड़

इस खेल को दो/चार/छह, कितने भी जने खेल सकते हैं। खेलने के लिये पांसे और कार्ड चाहिये। पेंसिल भी जरुरी है।

हर खेलने वाली टीम एक बैंक बना ले। बैंक में १३/२३ कार्ड और खूब सारे कंकड़ गिनकर रख लो। कम खिलाड़ी हैं तो कम कार्ड ; ज्यादा खिलाड़ी हैं तो . .

बारी-बारी से हर खिलाड़ी चलेगा। पांसे पर आई संख्या के बराबर कंकड़ बैंक से खिलाड़ी को मिलेंगे। लेकिन एक शर्त है, *जब भी किसी के पास १0 से ज्यादा कंकड़ हो जायें तो उसे बैंक को १0 कंकड़ दे कर एक कार्ड ले लेना है।*

मान लो पहली चाल में मिसराम का पांच आया। वो बैंक से पांच कंकड़ उठायेगा और अपने खाते में कंकड के नीचे लिखेगा ५ । इस तरह जिसके जितने आयेंगे वो उतने कंकड़ उठायेगा और अपने खाते में भरेगा।

मान लो मिसराम की दूसरी चाल में आया ६। अब उसके पास हो गये ५ + ६ = ११ कंकड़। उसे तुरंत ही बैंक में १0 कंकड़ डाल कर एक कार्ड उठाना पड़ेगा। अब उसके पास हो गया एक कार्ड और एक कंकड़। साथ ही वो अपने खाते मे कंकड़ के नीचे नोट करेगा +६, फिर लकीर बनाकर कार्ड के नीचे १ और कंकड के नीचे १ लिखेगा।

इसी तरह से सबको अपना खाता भरना है।

जिसके पास सबसे पहले ५ कार्ड हो जायेंगे, वो जीतेगा।

कार्ड	कंकड़

कार्ड	कंकड़

कौन पहले पहुंचेगा ?

राहुल और मीना ने एक नया खेल सोचा।
उन्होंने दो पासे लिए। खिलाड़ी दोनों पासों को एक साथ फेंकता था।
दोनों पर आई संख्याओं को गुणा करता था।

राहुल ने पहली बार फेंका तो एक पासे पर ४ आया।
दूसरे पासे पर ६ आया।

राहुल की संख्या हुई ४x६=२४

उसने यह संख्या कापी पर लिख ली।
मीना ने पासे फेंके तो दोनों पर ५-५ ही आया।

मीना की संख्या हुई ५x५=२५ ।

मीना की संख्या राहुल की संख्या से बड़ी थी।
कितनी बड़ी थी? ....

१×४	४
२×४	८
३×४	१२
४×४	१६
५×४	२०
६×४	२४
७×४	२८
८×४	३२
९×४	३६
१०×४	४०

१×६	६
२×६	१२
३×६	१८
४×६	२४
५×६	३०
६×६	३६
७×६	४२
८×६	४८
९×६	५४
१०×६	६०

मीना की गोटी एक घर आगे बढ़ गई।

१ x२	२
२ x२	४
३ x२	६
४ x२	८
५ x२	१०
६ x२	१२
७ x२	१४
८ x२	१६
९ x२	१८
१०x२	२०

अगली बार गुणा करने पर मीना की संख्या ४ ज्यादा आई।
उसकी गोटी ४ घर आगे बढ़कर ५ पर पहुंच गई।
फिर अगली बारी राहुल को संख्या ७ ज्यादा आ गई।
राहुल अब ९ पर आ गया, मीना ५ पर ही रही।
अभी वह ...... घर आगे था।

इसी तरह खेल चलता रहा।
अपने दोस्तों के साथ ऐसे ही खेलो।

कौन पहले पहुंचा ?

१×५	५	४×५	२०	७×५	३५
२×५	१०	५×५	२५	८×५	४०
३×५	१५	६×५	३०	९×५	४५

१×३	३
२×३	६
३×३	९
४×३	१२
५×३	१५
६×३	१८
७×३	२१
८×३	२४
९×३	२७
१०×३	३०

जादू की सीकें

छज्जू के पास कुछ सीकें थी। जिन्हें उसके सारे दोस्त जादू की सीकें कहते थे। छज्जू से जब कोई पूछता ५ x ७ कितना होगा? तब छज्जू फटाफट सीकें जमाता और बता देता - ३५ होगा। ऐसे ही कितने सारे सवाल वह हल कर देता। उसके सांथी उसे गुणा वाला जादूगर मानते थे। लेकिन उसकी दोस्त शीला उसे चालाक कहती थी। हर बार पता करने की कोशिश करती कि छज्जू गुणा के लिये करता क्या है।

आखिर एक दिन शीला ने उसे गुणा करते देख ही लिया। बस फिर क्या था, शीला ने छज्जू की जादूगरी सबके सामने खोल के रख दी।

अब तुम भी जादू की सीकें बना सकते हो।

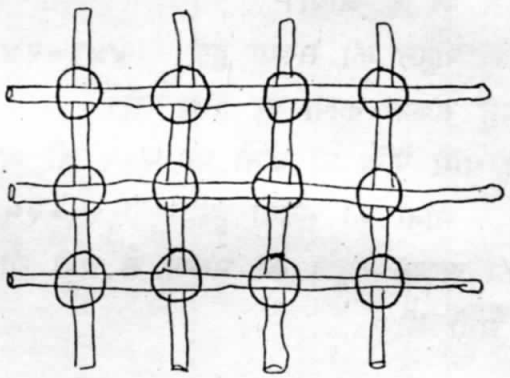

जितने में जितने का गुणा करना हो उतनी-उतनी सीकें ले लो। जैसे - ४ गुणा ३ करना है, तो पहले ४ सीकें एक-एक अंगुल की दूरी पर जमा लो। अब ३ सीकें उनपर एक-एक अंगुल की दूरी पर आड़ी जमा लो। जैसे चित्र में दिखाया गया है। अब बीच में जहा-जहां आड़ी खड़ी सीकों के जोड़ हैं उन्हें गिन लो, जितना आया, वही तुम्हारा उत्तर है ।

बस यही काम छज्जू सबसे छुपकर करता था । और सब उसे जादूगर मानते थे । आखिर शीला मे उसकी जादूगरी ढूंढ़ निकाली ।

अब तुम भी सीकों से गुणा करके नीचे लिखे सवालों के उत्तर लिखो ।

४ x ५=   ७ x ३=   ८ x ६=   ९ x ४=   ३ x ६=   ५ x ७=   ४ x ८=

७ x ६=   ७ x ७=   ८ x ५=   ४ x ४=   ६ x ९=   ३ x ३   ९ x ९=

अपने कत्ल की दावत

इससे पहले कि
उदासीन हो जाए
मेरे लहू का उबाल,
परिस्थितियों के प्रतिक्रम में,

इस से पहले कि-
कैलाश पर्वत की सर्द चोटी पर
कर ले निवास-
मेरे ख्यालों की तपिश,
मुझे कत्ल कर देना मेरे यारो।

मैं नहीं चाहता कि-
कविता से घर के राशन की लिस्ट में हो जाऊं तबदील,
मैं नहीं चाहता कि-
काफ़िले के सार्थक शोर से बिछुड़
रह जाऊं निरर्थक 'बंद' के वक्त
किसी सहमी हुई दुकान के-
ताले की खामोशी बन,
गर कुछ भी घटने लगा ऐसा
तो उस से पहले
मुझे गोली मार देना मेरे दोस्तो!

इस से पहले कि-
मैं हो जाऊं दो वक्त की-
रोटी का कैदी,
व किसी वेश्या के-
शारीरिक संबंधों से उक्ता जाने की तरह,
स्वाभाविक ही लेने लगूं-
वक्त के हर बदलाव को
तथा पहनकर अपने शरीर पर
किसी पारंपरिक क्लर्क की लाश
कर दूं नाजायज़ बच्चे की तरह
अपने ज़मीर का कत्ल,
तो तुम इस कत्ल की सजा के तौर पर
कर देना बेरहमी से मेरा कत्ल,

मैं जो कभी वोट मांगते
'लाऊड-स्पीकर' की तरह
भौंका करता था दावे,
वहीं मैं गर किसी धमकी-पत्र से डर कर दफ़न हो
जाना चाहूं
अपने ही धड़कते सीने के अंदर के
दिशाहीन, लाचार, गुबार की कब्र में,
मैं जो कभी सरकारी सूत्रों के झूठ की तरह,
निडर-बेबाक सच्च था,
वहीं मैं गर चाहूं-
अपने रिश्तों की फांसी से
आत्म-हत्या करना,
व मुंह छुपा कर तुम सब से
हो जाना कथित 'समझदार'
खामोशी का हाशीया,
तो तुम इस से पहले
मेरा सिर कर देना कलम,

यह अहसान होगा मुझ पर,
मेरे शुभचिंतको!
मैं बच जाऊंगा-
कायर गुमनामी के अंधेरों की ज़िल्लत से,
उस ज़िल्लत से-
अपने हाथों से बदरंग कर
अपने इतिहास के निर्मल पानी का रंग
जिसे तमाम उमर भोगूंगा मैं!
मुझे शाप जैसे
इस पड़ाव के संताप से
बचा लेना मेरे यारो!

गर कभी घटने लगे कुछ ऐसा
तो उस से पहले कर के मेरा कत्ल
शहादत में बदल देना मेरी मौत को,
कि मैं मरना नहीं चाहता।

अमर दीप गिल

प्रकाशक : एकलव्य, ई-1/208 अरेरा कालोनी, भोपाल 462 016
सम्पादन कार्यालय : एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद 461 001
मुद्रण : राजकमल प्रिंटर्स, अरेरा कालोनी, भोपाल 462 016